

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182709

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No ~~H 81-28~~ 857M Accession No P. G. H 100

Author भटनागर , रामरतन .

Title मलिक मुहम्मद जायसी : एक

This book should be returned on or before the date
last marked below अहथयन . 1947.

मलिक मुहम्मद जायसी

मलिक मुहम्मद जायसी : एक अध्ययन

आलोचना व विमर्श
लेखक

रामरतन भटनागर



कि ता ब म ह ल

इलाहाबाद

२३५, होर्नबी रोड, फ़ोर्ट, बम्बई.

प्रथम संस्करण, १९४७

Checked 1969

प्रकाशक : किताब मंजल ५६-५० जीरो रोड, इलाहाबाद
मुद्रक : रामभरोस मालवीय, अण्ड्युदय प्रेस, प्रयाग

सूफीमत और उसका इतिहास

कबीर और जायसी हिंदी के दो सर्वश्रेष्ठ सूफी कवि हैं। वैसे कबीर को निर्गुण मत के अंतगत बताया जाता है और उनकी भावधारा को संत-भावधारा कहा जाता है। परंतु कबीर शेख नकी के शिष्य थे। यह प्रसिद्ध बात है। शेख नकी अपने समय के प्रसिद्ध सूफी थे और अब भा जौनपुर में उनकी समाधि बनी हुई है। कबीर की रचनाओं में सूफी विचारधारा भी पर्याप्त मात्रा में मिलती है। अतः कबीर का अध्ययन करने के लिए सूफी विचारधारा का अध्ययन भी आवश्यक हो जाता है। जायसी तो प्रसिद्ध सूफी है ही। उनका पद्मावत सूफियों का अत्यंत लोकप्रिय ग्रंथ रहा है। जायसी के अध्ययन का भूमिका के लिए सूफीमत के सिद्धांतों और इस धार्मिक आन्दोलन का इतिहास जानना आवश्यक है।

{हिंदी वाले जिसे सूफीमत कहते हैं उसे फारसी-उर्दू में 'तसव्वुफ' कहा जाता है। 'तसव्वुफ' और 'सूफी' दोनों शब्द 'सूफ' शब्द से बने हैं। "सूफो शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में अनेक मत हैं। कुछ लोगों की धारणा है कि मदीना में मसजिद के सामने सुफ्फा (चबूतग) था उसी पर जो फकीर बैठते थे वे सूफी कहलाये। दूसरे लोगों का कहना है कि सूफो शब्द के मूल में सफ (पंक्ति) है। निर्णय के दिन जो लोग अपने सदाचार एवं व्यवहार के कारण औरों में अलग एक पंक्ति में खड़े किये जायेंगे वास्तव में वे सूफी कहिये हैं। तीसरे दल का

कथन है कि सूफी वस्तुतः स्वच्छ और पवित्र होते हैं। सफ़ा होने के कारण उन्हें सूफ़ी कहते हैं। चौथे दल के विचार में सूफी शब्द सोफिया (ज्ञान) का रूपांतर है। ज्ञान के कारण ही उनको सूफी कहा जाता है। पर अधिकतर विद्वानों का मत है कि सूफी शब्द वास्तव में सूफ (ऊन) से बना है। सूफधारी ही वास्तव में सूफा के नाम से ख्यात हुए। निकल्सन, ब्राउन मारगोलियथ प्रभृति विद्वानों ने सिद्ध कर दिया है कि वास्तव में सूफ़ो शब्द सूफ से बना हुआ है। अनेक मुसलिम आलिमों ने भी इसमें स्वीकार किया है।” (तसव्वुफ अथवा सूफी-मत, चन्द्रबजी पांडेय, पृ. ५) जो हो, सूफ़ा से मतलब है इस नामी संत। वैम बर्पातरुमा देने बाज़ा जान या यूद्जा भी सूफ़ (श्वेत ऊनी वस्त्र)-धारी था।

‘तसव्वुफ़’ का संबंध चाहे इस्लाम में अत्यंत निकट रहा हो, परन्तु इसमें संदेह नहीं कि मादनभाव से ईश्वर की श्रद्धा, परमसत्ता के लिए संयोग और वियोग को जगाने की प्रवृत्ति प्रागैतिहासिक काल से चली आती थी। पूर्व और पश्चिम के पंडित तसव्वुफ़ (इस्लामी सूफीमत) पर निम्न प्रभाव मानते हैं :—

- १—नास्टिक
- २—मानी
- ३—नव-अफलातूनी
- ४—यहूदी
- ५—मसीही
- ६—बौद्ध
- ७—भारत का वेदांत-मत

उनका कहना है कि इस्लाम धर्म के जन्म में बहुत पहले सूफी-धर्म का रूप गढ़ा जा चुका था। भारत के वेदांत और बौद्धमत

के प्रभाव दूसरी-तीसरी शताब्दी से प्रारंभ हुए और नवी-दसवीं शताब्दी में जब मुलतान और अजमेर इस देश में सूफ़ियों के केन्द्र बने तो सूफ़ीमत वेदांत और भक्ति-प्रधान परवर्ती महा-यान से इतना मिलता-जुलता था कि भारत की जनता ने इसका स्वागत ही किया। इस्लाम के प्रति चाहे साधारण हिन्दू जनता में कितना ही द्वेष भरा रहा हो, सूफ़ी-संत बराबर लोकप्रिय रहे हैं।

खोजियों का विश्वास है कि अरब और शाम की शामी सभ्यता भारत से ही पश्चिम की ओर गई। शमियों के आदि पुरुष आदिम स्वर्ग से च्युत हो दक्षिण भारत (सरनद्वीप) में ही उतारे गये। वहाँ वर्षों तप करने के बाद अन्तरात्मा की प्रेरणा से वह अरब आये। वहाँ उन्होंने काबा का निर्माण किया और उसमें शिवलिंग की स्थापना की। इस कहानी के रूपक को खोलने से यह साफ पता चलता है कि 'आदिम' कोई कृषि प्रधान जाति थी, या 'आदिम' नाम का कोई व्यक्ति इसका नेता था। भारत इसका निवास्थान था। किसी कारण से इसे भारत छोड़ कर पश्चिम की ओर जाना पड़ा। श्री चंद्रबली पांडेय आदिम का संबंध 'पणि' जाति से जोड़ते हैं जो आर्यों के आक्रमण से पहले मोहनजोदरो और हरप्पा में बसती थी। आर्यों के प्रसार के कारण यह जाति सौवीर, बवेरु, अरब और दक्षिण भारत चली गई। पश्चिम में इसका नाम 'ओनीशिया' पड़ा। संभव है नर्मदा तलेटी की आर्येतर सभ्यता (माहिष्मती-सभ्यता) इसी आदिम जाति की सभ्यता रही हो। कहा जाता है कि जल-प्रलय के बाद आदिम का शव यरुशलम लाया गया। संभव है, भारत से भाग कर 'पणि' जाति अरब गई हो और फिर शीघ्र ही उनके नेता आदिम दजला-फरात की उपजाऊ तलेटी में बस गये हैं।

हो जिसका अवस्ता और वेद में उल्लेख है और अनंत युगों तक पौराणिकों को बराबर जिसकी स्मृति बनी रही। जो हो, यह ५००० पू० ई० से लेकर ४००० पू० ई० तक की बात है। उस समय अवस्ता और ऋग्वेद की रचना नहीं हुई थी। कहने का तात्पर्य यह है कि मध्यपूर्व एशिया के मादन-भाव के पीछे एक विशेष जाति और धर्म की प्रेरणा जान पड़ती है। वह निःसन्देह भक्ति-प्रधान, योग-मूलक, रहस्यात्मक धर्म रहा होगा। इसी धर्म ने ऋग्वेद की आर्य भावना को उपनिषदों की रहस्यवाणी प्रदान की होगी। विशेष परिस्थितियों के कारण सामी जातियों में धर्म-विकास ने दूसरा ही रूप पकड़ा, परंतु रहस्य, गुह्य और वेदातात्मक रहस्यभाव मूल रूप में शामियों में भी मौजूद था—कहने का तात्पर्य इतना ही है।

आर्यों के धर्म का विकास ईरान और भारत में दो रूपों में हुआ। भारत के 'सुर' ईरान के 'असुर' बन गये। परंतु दोनों आर्य सभ्यताओं में विचारों और धर्म-संबंधी भावनाओं का आदान-प्रदान बराबर चलता रहा। शामीमत के विकास में पारसियों (ईरानी आर्यों) का बड़ा हाथ रहा है। पारसी-आर्यों की एक शाखा 'मग' कहलाती थी। ईसा मरीह के समय में पूर्व (ईरान) के मग साधुओं की बड़ी प्रतिष्ठा थी। अंजील में एक कहानी है कि बालक मसीह का पता लगाने-लगाते पूर्व के सात मगसाधु यरूशेलम आये और उन्होंने बालक को आतीर्षाद किया। मगों का सूफीमत से कोई संबंध अवश्य रहा होगा क्योंकि सूफियों ने मगों को अपना गुरु माना है। "नास्टिक मत का प्रवर्तक साइमन नामक मग था। उसने जिस संप्रदाय का प्रवर्तन किया उसका अधिकांश बौद्धमत पर अवलंबित था। नास्टिक बुद्ध का पर्यायवाची शब्द जान पड़ता है।" "नास्टिकों से कहीं अधिक प्रभावशाली मानीमत के प्रचारक हुए। मानीमत ने स्वयं

मुहम्मद साहब को भी प्रभावित किया। मानीमत का तसव्वुफ के विकास में याग पूरा रहा और हल्नाज जैसे प्रतिद्ध सूफी इसी मत के अनुयायी के रूप में बदनाम होकर मारे गये। इस मत का प्रवर्तक 'मानी' बौद्ध मत का ज्ञाता था। जिज्ञासा की प्रेरणा में उसने भारत तथा चीन में भ्रमण किया।" (वही, पृ० २४०)

सूफीमत पर सिकंदरिया के नव-अफलातून मत का भी व्यापक प्रभाव पड़ा है। नव-अफलातूनी दर्शन यूनानी दर्शन का अंतिम रूप है। राहुल सांकृत्यायन के अनुसार "यह पाश्चात्य दर्शन और पोगस्त्य योग, रहस्यवाद अध्यात्मशास्त्र का एक अजीब मिश्रण था" (दर्शन-दिग्दर्शन, पृ० ३७)। ईसा-पूर्व तीसरी शताब्दी में अशोक ने पूर्व पश्चिम में अनेक भिन्न धर्म-प्रचार के लिए भेजे। कुछ भिन्न यवन-देश (यूनान) भी पहुँचे। शाहवाज्जगदी के शिलालेख में इस धर्म विजय का स्पष्ट उल्लेख है "यह धर्म-विजय देवताओं के प्रिय (अशोक) ने यहाँ (अपने राज्य में) तथा ६ सौ योजन दूर पड़ोसी राज्यों में प्राप्त की है जहाँ अतियोक नाम यवन राजा राज करता है।" महावश २६।३६(भद्रंत आनंद कौमल्यायन का हिंदी-अनुवाद, पृष्ठ १३६)। ईसा पूर्व पहली सदी में लंका के रत्नमाल्य चैत्य के उद्घाटन उत्सव में सिकंदरिया के बौद्ध भिन्न धर्मगद्दिन के आने का जिक्र आता है। यह स्पष्ट है कि इस समय परिष्कृत धर्म में अनेक बौद्धमत स्थापित हो चुके थे। पिथागोर (५७०—५०० ई० पू०) और सिकंदर (३५६—२९ ई० पू०) के समय से ही भारत दार्शनिकों और योगियों के लिए प्रसिद्ध था। सातवीं-छठवीं सदी ई० पू० में भारत में उपनिषदों के रहस्यवाद का जन्म हो चुका था और पीछे में आने वाले जैन, बौद्ध, योग, वेदान्त, शैव, पांचरात्र, महायान, तत्रयान, और वासुदेव-भक्तिमार्ग में इस रहस्यवाद का भी योग सहज रूप से हो गया। नव-अफलातूनी दर्शन के अनुसार इंद्रियो द्वारा प्रत्यक्ष सारा

ससार माया, भ्रम, इन्द्रजाल है। विज्ञान (मानस) जगत ही सच्चा है। फिलोयूपियो (ई० पू० २५—५० ई०) नवीन-अफलातूनीय शासको मे सबसे महत्वपूर्ण है। इस दर्शन मे सबसे बड़ा नाम प्लोतिन (Plotinus) का है जिसका समय २०५-७१ ई० पू० है। नवीन अफलातूनीय दर्शन की शिक्षा थी—“सभी चीजें एक अज्ञेय परमतत्त्व, अनादि विज्ञान से पैदा हुई हैं। परमात्मा से उनका संबंध वस्तु के तौर पर नहीं, बल्कि कल्पना के तौर पर है, यही कल्पना करना उस परमतत्त्व के अस्तित्व का परिचायक है। परमतत्त्व के किसी गुण को समझने के लिए हमारे पास कोई इन्द्रियाँ साधन नहीं हैं। इस परमतत्त्व से एक आत्मा पैदा होता है जिसे ईश्वर कहते हैं और जो विश्व का सृष्टि-कर्ता है।” “अफलातूँ ने प्रयोग या अनुभव से ऊपर बुद्धि को माना था, किन्तु नवीन अफलातूनी समाधि के साक्षात्कार, आत्मानुभूति को बुद्धि से भी ऊपर मानते थे।” (वही पृ० ४१) इस प्रकार भारतीय रहस्यवादी धारा रोम और यूनान तक फैल गई। सिकन्दरिया में जो धार्मिक जिज्ञासा जगी, उसका श्रेय भारत को ही है, यह निःसन्देह ठीक है।

मसीह से बहुत पहले उनके देश में यहूदी धर्म फल-फूल रहा था। लोकमान्य तिलक ने लिखा है कि “ईसा से दो तीन सौ वर्ष पहले ही यहूदियों के देश मे बौद्ध यतियों का प्रवेश होने लगा था, और जब यह संबंध सिद्ध हो गया, तब यह बात सहज ही निष्पन्न हो जाती है कि यहूदी लोगो मे संन्यास-प्रधान एसी धर्म का और फिर आगे चलकर संन्यासयुक्त भक्ति-प्रधान ईसाई धर्म का प्रादुर्भाव होने के लिए बौद्ध धर्म ही विशेष कारण हुआ होगा” (गीतारहस्य, पृ० ५६२)। मसीह के गुरु यूहन्ना ऐसीन-संप्रदाय के थे। इस मत मे एक-चौथा अंश यहूदियों का था, तीन-चौथाई बौद्धो का। सूफी-भावना के जन्म

गौर विकास के इतिहास में सीरिया और बसरा (ईरान) का मुख हाथ रहा है। इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि अनेक बौद्ध भिक्षु सीरिया में पहुँच गये थे, और विशेष संकट की अवस्था में वे शामीमत स्वीकार करके वहीं रहने लगे (क्रिश्चियन मिस्टिसिज्म, पृ० १०४)। धर्मसंकट के समय अनेक सीरिया-निवासी दक्षिण भारत में भी आकर बस गये थे, ऐसा द्राविड़ भाषाओं के अध्ययन से सिद्ध होता है (ए कम्पेरेटिव ग्रैमर आव दी ड्रवेडियन लैंग्गुएज, पृ० १६)। बसरा प्रांत (ईरान) पर तो भारत का प्रभाव इतना अधिक था कि अरब उसे हिंद का अंग समझते थे।

इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि मादनभाव से परम-सत्ता से संबंध जोड़ना मूलतः भारतीय भावधारा है जिसका स्रोत द्रविड़-सभ्यता या उससे भी पहले ढूँढ़ना होगा। यह आर्यभाव नहीं है। परंतु धीरे-धीरे यह भाव आर्यधर्म में भी प्रवेश कर गया। उपनिषदों में पहली बार इसके दर्शन होंगे और फिर भक्तिवाद के रूप में इसने परवर्ती सभी धर्म-चिन्ताओं को प्रभावित किया। भारत से इस भावधारा का प्रचार पश्चिमी देशों में हुआ और वहाँ शामीमत ने इसके योग से एक नितान्त नवीन रूप ग्रहण कर लिया। -

‘तसव्वुकु’ के इस्लामी रूप का आदि स्रोत ‘कुरान’ माना जाता है। कुरान मूलतः शामी ग्रंथ है, परंतु वह भारतीय धर्मचिन्ता से प्रभावित हुआ है, इसमें कोई संदेह नहीं। मक्का पश्चिमी अरब का उतना ही प्रसिद्ध व्यापार-केन्द्र था जितना पूर्व में बसरा। अतः यदि योग और रहस्यात्मक मिलन-विरह (मादनभाव) की साधना का प्रवेश कुरान में हो गया, तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं हुई। मक्का के निवासी भारतीय

व्यापारियों की धर्मभावनाओं से अपरिचित नहीं रहे होंगे। मुहम्मद साहब ने हेरा की गुफाओं में तपद्वारा 'इलहाम' (ईश्वर-सदेश) की प्राप्ति की और इतिहास कहता है कि हिदा नाम की हेरा की रानी ने अपने राज्य में एक मठ बनवाया था। अतः स्पष्ट है कि उस समय भारतीय विचार सामान्य रूप से दूर-दूर तक फैल गये थे और उनका व्यापक प्रभाव स्पष्ट था। जिन हनीफ और शेवी जातियों का कुरान में उल्लेख है और जो पश्चिमी समुद्र तट पर बसी कही जाती है, वे कदाचित् भारत की 'पणि' और 'शैव' जातियाँ हैं। संभव है उपनिषदों की विचारधारा का कुरान पर भी प्रभाव पड़ा हो। "हमारी समझ में कुरान में जो इस प्रकार के भाव आते हैं कि जिधर देखो उधर अल्लाह है, वह हमारे निकटतम है, व्यापक है, अन्तर्यामी भी है, आदि—ये सब उपनिषदों के प्रभाव हैं।" (तमवुफ अथवा सूफीमत, परिशिष्ट, पृ० २४१) जो हो, सूफी विचारधारा के मूल स्रोत अनेक हैं और ४००० पू० ई० से मुहम्मद के समय (सातवीं शताब्दी) तक इन स्रोतों का जल इतना मिल-जुल गया था कि उन्हें अलग-अलग पहचानना असंभव था।

मुहम्मद साहब के समय में अरब और भारत का व्यापार-संबन्ध बराबर बना हुआ था। इस्लाम स्वीकार कर लेने पर भी अरब यात्री इस देश में आते और दक्षिण में आदम के चरण-चिह्न (रामेश्वरम्) की यात्रा करते। उन दिनों इस देश में वीर कौलो का बड़ा प्रभाव था। ये लोग एक प्रकार के तांत्रिक बौद्ध थे। अरबी लेखकों ने इन्हें 'बेकर' कहा है। ये अरबों का सत्कार करते थे। जान पड़ता है, ये वीर कौल भारत के पतन के मुख्य कारण हुए। मुहम्मद साहब के समय में ही दक्षिण भारत उनसे परिचित हो गया था। बिन शहरयार नाम का

लेखक लिखता है कि जब सरनद्वीप (दक्षिण भारत) तथा आम-पास के लोगों को मुहम्मद साहब का हाल मालूम हुआ तब एक समझदार आदमी को पता लगाने के लिए अरब भेजा गया। उस समय हजरत उमर का जमाना था। वह आदमी रास्ते में मर गया। पर उमका दूसरा साथी सरनद्वीप पहुँच गया। उससे उमर महोदय की रहन-सहन सुनकर लोग मुपलमानों से और भी अच्छा व्यवहार करने लगे (अरब व हिंद के तालुकात, पृ० २६८)। उमर के समय में बम्बई के पास का थाना द्वीप अरबों के अधिकार में आ गया और कुछ समय बाद अरबों ने सिंध पर भी अधिकार जमा लिया। सिंध के मुसलमान मक्का जाने लगे और धीरे-धीरे मुलतान तसव्वुफ का केन्द्र हो गया। अरब और भारत के इस संबन्ध के साथ सूफी वेदांत से सीधे प्रभावित होने लगे।

उमय्या देश के पतन के बाद ईरानी सभ्यता ने अरब सभ्यता पर विजय प्राप्त कर ली और अब्बालियों की कृपा से बगदाद विद्या का केन्द्र बन गया। बरामना मन्त्री बने। ये पहले बौद्ध थे, अतः इनका भारत की संस्कृति और भारत के इतिहास के प्रति आकर्षित होना स्वाभाविक था। इनके समय में अनेक ग्रन्थ संस्कृत से अरबी-फारसी में अनूदित हुए। जान पड़ता है इस सूफीमत पर दो भारतीय प्रभाव पड़े। एक तो वेदांत का प्रभाव, दूसरे महायान का।

इस समय महायान में सहजयान और वज्रयान नाम के गुह्य संप्रदाय चल रहे थे। सिद्धों की बड़ी प्रतिष्ठा थी। इन संप्रदायों से सूफियों का विशेष परिचय हुआ होगा। सिद्धों के 'आनंदवाद' (परम सुख) ने सूफियों को अवश्य ही प्रभावित किया होगा, इसमें कोई भी संदेह नहीं है। इस प्रकार सूफीमत में धीरे-धीरे गुह्यता और भक्ति का योग हो गया।

जैसा हम पहले कह चुके हैं, बसरा और बगदाद बहुत पहले से सूफीमत के केन्द्र रहे हैं। परन्तु अन्य इस्लामी देशों ने भी इस मत के विकास में विशेष योग दिया। मिस्र के जूललून और स्पेन के अरबी ने इस दिशा में महत्वपूर्ण काम किया है। ये दोनों वर्षों बगदाद में रहे थे और अरबी ने तो कदाचित् ७-८ वर्ष भारत में बिताये। उन्होंने एक योगी की सहायता से 'अमतकुंड' के अनुवाद का संशोधन भी किया था जिसे अमीदी ने 'मिरातुलमानी' के नाम से कुछ पहले तैयार किया था। अरबी का आविर्भाव काल १२१२ ई०—१२५२ ई० है। अरबी ने तसव्वुफ में 'बहदतुलवजूद' का प्रतिपादन किया और सिद्ध सूफियों में वह प्रसिद्ध अद्वैतवादी सिद्ध हुआ। अरबी के बाद 'जिली' का नाम आता है। यह कुछ दिनों काशी में भी रहे। इन्होंने तसव्वुफ में 'इंसाने कामिल' की प्रतिष्ठा की और मुहम्मद साहब को 'इंसानुलकामिल' (पूर्ण पुरुषोत्तम) सिद्ध किया। जिस तरह शकर के अद्वैत पक्ष का खंडन रामानुज ने किया था उसी तरह अरबी के पक्ष का खण्डन जिली ने किया। जिली के बाद तो अनेक सूफी भारतवर्ष में आकर बस गये और उन्होंने अनेक सूफी-संप्रदाय प्रतिष्ठित किये।

इस्लामी सूफीमत का विकास

६३२ ई० में मुहम्मद साहब की मृत्यु हो गई। सूफियों का कहना है कि मुहम्मद साहब ने स्वतः गृह्यता के कारण सूफीमत का प्रचार नहीं किया। उन्होंने इसकी शिक्षा अली को दी। अली की मृत्यु-तिथि ६६० ई० है। जान पड़ता है, अली अच्छे भक्त थे। वे इस्लाम का संचालन बहुत समय तक नहीं कर सके। ६६० ई० में उनका बध कर दिया गया और उम्रैया वंश ने शासन आरम्भ किया। इसका शासन काल ६६१-७४६ ई० है। ६८० ई० में करबला की प्रसिद्ध घटना हुई और अली के दोनों पुत्र हसन-हुसैन बलि को प्राप्त हुए। अली की इमामत को लेकर मुसलिम जगत में जो तीव्र मतभेद उठ खड़े हुए थे, उन्हें लेकर अनेक पंथ चल पड़े। खलीफाओं की इस्लामी सल्तनत सीरिया से सिंध तक फैल गई थी और इस्लाम अनेक प्रौढ़ धर्मों के संपर्क में आ गया था। शीघ्र ही बसरा में एक “मोतजिली” नाम के एक बुद्धिवादी संप्रदाय का जन्म हो गया जिसका नेता हसन (मृ० ७२८ ई०) था। ‘मोतजिली’ मतवाद हमारे यहाँ के संतमतवाद से मिलता-जुलता है। इसे ज्ञानाश्रयी भक्तिवाद कहा जा सकता है। उसमें अभी मादनभाव का मिश्रण नहीं हुआ था। हसन की मृत्यु के बाद ईरान में सूफीमतवाद की इतनी प्रबल लहर उठी कि सारा इस्लामी जगत उसकी हिलोरो में डूबने-उतराने लगा।

शताब्दी में ही हुआ। इसका श्रेय राबिया (मृ० ७५२ ई०) और उसकी सहेलियों और मंसूर को मिलना चाहिये। राबिया दासी थी और वह अपने को अब्लाह की पत्नी समझती थी। मोरा और अडाल जिस तरह अपने का कृष्ण की दुल्हिन समझती थी उसी तरह राबिया और उसकी सखियाँ अपने को अब्लाह की दुल्हिन समझती थी। इन भक्त महिलाओं की तरह राबिया कहती है—

“हे नाथ ' तारं चमक रहे हैं, लोगों की आँखे मुँद चुर्की है, सम्राटो ने अपने द्वार बंद कर लिये हैं, प्रत्येक प्रेमी अपना प्रिया के साथ एकांत सेवन कर रहा है, और मैं यहाँ इकेला आपके साथ हूँ।” (राबिया द मिस्टिक, पृ० २७) “हे नाथ, मैं आपको द्विधा प्रेम करती हूँ। एक तो यह मेरा स्वार्थ है कि मैं आपके अतिरिक्त किसी अन्य को कामना नहीं करती, दूसरे यह मेरा परमार्थ है कि आप मेरे परदे को मेरी आँखों के सामने से हटा देते हैं ताकि मैं आपका साक्षात्कार कर आपकी सुरति में निमग्न हूँ। किसी भी दशा में इसका श्रेय मुझे नहीं मिल सकता। यह तो आपकी कृपाकोर का प्रसाद है।” (एल्लिटेरेरी हिस्टरी आव द अरब्स, पृ० २१४) अन्य सूफी कवियों की तरह रसूल में आस्था रखती हुई भी राबिया अद्वैत ब्रह्म को ही अपने मादनभाव का आलंन मानती है— “हे रसूल। भला ऐसा कौन प्राणी होगा जिस पर आप प्रिय न हों। पर मेरी तो दशा ही कुछ और है। मेरे हृदय में परमेश्वर का इतना प्रसार हो गया है कि उसमें उसके अतिरिक्त किसी अन्य के लिए स्थान ही नहीं है।” (वही, पृ० १३४) राबिया और उसकी सहेलियों को शरियत विरुद्ध भावनाओं के प्रकाशन के लिए बड़ा कष्ट सहना पड़ा। बरजा के हाथ-पैर काटे गये। इन संत-महिलाओं ने रसूल (मुहम्मद) की मधुर उपेक्षा की और

मारे जीवन को परमेश्वर के प्रेम से प्लावित कर दिया । इनके उद्गारों में जहाँ प्रेम का पुनीत दर्शन है, जहाँ भावना का दिव्य विलास है, वहाँ वेदना का भी प्राचुर्य है । संयोग-वियोग के निम्न प्रकार के चित्र सिद्धों और संतों की कविताओं में मिलते हैं, उस प्रकार के चित्र यहाँ भी मिलते हैं । हो सकता है कि मनोविज्ञान के इस युग में हम यह सिद्ध कर दें कि इन महिलाओं की प्रेम भावनाओं का मूल स्रोत वस्तुतः वासनात्मक था, परन्तु इससे उन पर कोई लाजा नहीं आती । उन्होंने अपनी शमना को परलोकोन्मुख किया और सहस्रो-सहस्रो हृदयों में शांति और सुख का संचार किया । यह स्पष्ट है कि इस प्रकार की उत्कट प्रेम-भावना मूल रूप में इस्लामी नहीं है । ईसा की पहली शताब्दी से भी पहले अलवारों, शैवों, बौद्ध महायानियों में इस प्रकार की प्रेम-साधना चली आती थी और ईरान और अरब इससे भली-भाँति परिचित थे । आठवीं शताब्दी में इसी प्रेम-साधना ने इस्लाम के अंतर्गत सूफी-साधना का रूप ग्रहण किया ।

सातवीं-आठवीं शताब्दी में इस्लाम वर्म पूर्णरूप से व्यवस्थित नहीं हुआ था । अनेक संप्रदाय उठ खड़े हुए थे । कुरान, हदीस, ईमान, कर्म, भाग्य, न्याय, रसूल लगभग सभी विषयों पर विवाद चल पड़े थे । अलग-अलग मत गढ़े जा रहे थे । अतः उस समय के समय (६४४—५६ ई०) में कुरान को निश्चित रूप प्राप्त हो गया और उसमें कुछ भी परिवर्तन करना असंभव हो गया । खलीफ़ाओं ने अनेक मतवादों के प्रति असहिष्णुता दिखलाने की चेष्टा की । अतः नये संप्रदाय कुरान की मान्यता से आगे नहीं बढ़ सकते थे । अब शब्दशक्ति पर अधिक ध्यान देकर अभिया के स्थान में लक्षणा से सहारा लिया जाने लगा । मोतज़िला संप्रदाय ने पहले-पहल कुरान की नई व्याख्या की ।

चाहे इस संप्रदाय ने किसी विशिष्ट दर्शन या मतवाद को जन्म नहीं दिया, परन्तु इमने इस्लामी चिंता को म्कभोर दिया, इसमे सदेह नहीं। मुर्जी, खारिजी, क्लादिरि आदि कई दल उठ खड़े हुए। ७वीं-८वीं शताब्दी के सबसे महत्वपूर्ण सूफी संत इब्राहीम और दाऊदताई हैं। इनमे अनुराग (प्रेमभाव) की अपेक्षा विराग ही अधिक था, परन्तु लौकिक प्रेम (इश्के हकीकी) को पारलौकिक प्रेम (इश्के मजाज्जी) का प्रतीक मानकर चलने की चाल पड़ गई थी। वास्तव मे उस समय मारे पूर्व में निर्गुणवाद की धारा बढ़ रहा थी। नवीं शताब्दी के मध्य में भारत के शंकराचार्य और मोतजिलियों (बसग) को अल्लअल्लाफ ईश्वर को ष्द्वैत और निर्गुण मानते हैं, उसे निर्विशेष कहते हैं। नज्जाम (म० ८४५ ई०), जहीज (८६६ ई०), मुअम्मर (६०० ई०) और बस्त्री (८३३ ई०) ने मोतजिलियों की चिंता-परम्परा आगे बढ़ाई। मोतजिलिया की दार्शनिक स्वतंत्रता के विरुद्ध इसी समय करामो और अशअरी संप्रदाय भी उठ खड़े हुए।

सबसे पहले सूफी की उपाधि अबू-हाशिम (७७० ई० के लगभग मृत्यु प्राप्त) को मिली। इसके बाद राबिया (मृ० ७५८ ई०) और उसकी सहेलियाँ और मंसूर (मृ० ७८४ ई०) आते हैं। इस समय मुलतान तसव्वुफ का केन्द्र बन गया था। अनेक बौद्ध इस्लाम धर्म कबूल कर चुके थे। वीर कौलों (तांत्रिक बौद्धों) का भी प्रभाव पड़ रहा था। पश्चिम के मसीही भक्तिभाव से भी इस्लामी आच्छूते नहीं रह सके। मंसूर का गुरु जुनैद था (मृ० ६०६ ई०)। वह बाहर से कट्टर मुसलमान बना रहता था, परन्तु भीतर-भीतर ख्याज्ञान (मादन-भाव) का प्रचार करता था। परन्तु मंसूर (हल्ताज) शतशः प्रेमीजीव था। इसी से शरियत के उपासक उसके प्राणों के ग्राहक हो गये। हल्ताज

(म० ६२१ ई०) को अनेक यातनाएँ झेलनी पड़ीं । 'अनलहक' कह कर उसने ब्रह्मवाद के "तत्त्वमसि" की बात दुहराई । 'अह ब्रह्मास्मि' की प्रेरणा उसे अवश्य भारत से मिली होगी । वह कहता है—“मैं वही हूँ जिसको प्यार करता हूँ, जिसे प्यार करता हूँ वह मैं ही हूँ । हम एक शरीर में दो प्राण हैं । यदि तू मुझे देखता है तो उसे देखता है और यदि उसे देखता है तो हम दोनों को देखता है ।' सूफियों के अनेक सिद्धांत मंसूर (हल्लाज) से ही आरम्भ होने हैं । उसी ने 'हुलूल', 'लाहूत', 'नासूत', 'नू' मुडम्मदी', 'अन्न' और 'अनलहक' की व्यवस्था की ।

इसके बाद फाराबी (म० ६५०), अबूसईद (म० १०१६ ई०) और इमाम गजाली (म० ११११ ई०) के नाम आते हैं । फाराबी ने कुरान एवं दर्शन का समन्वय कर सूफीमत का मार्ग स्वच्छ किया । सईद ने 'समा' (समाधि) की व्यवस्था की । वह कहता था कि समा विषय-वासना के नाश के लिए उपयुक्त साधन है । सईद अत्यंत ऊँची श्रेणी के शासक थे और उनकी साधना और उनके व्यक्तित्व ने सूफी मत को अत्यन्त लोकप्रिय बना दिया । परन्तु कट्टर इस्लामी अब भी सूफीमत को इस्लामधर्म के विरुद्ध मानते थे । सूफी भले ही अपने मत को इस्लाम-प्रतिपादित अथवा मुहम्मद साहब की थाती कहे, क्राजी और मुल्ला उन्हें 'जिंदीक' (नास्तिक) कह कर फतवा दे सकते थे । वास्तव में इस्लाम और सूफीमत का संघर्ष अरब और ईरान एवं आर्य और शामी संस्कृतियों का संघर्ष था । सूफियों की लोकप्रियता बढ़ रही थी । अनेक खानकाह बन चुके थे और 'नबी' की भाँति सूफी भी पूजे जाने लगे थे । ऐसी व्यक्ति की आवश्यकता थी जो इस्लाम और सूफीमत के इस विरोध को मिटा दे । इस्लाम और सूफीमत का समन्वय इमाम गजाली (म० १११३ ई०) ने किया । उसके

प्रयत्न से तसव्वुफ इस्लामी दर्शन बन गया। शामी मतवाद में प्रेम के संयोग-त्रियोग पत्तों का समावेश हो गया। गज्जाली ने धर्म, दर्शन, समाज और भक्तिभावना का समन्वय किया। इससे इस्लाम को पुष्टि ही मिली। गज्जाली के काम को जिली, अरबी और रूमी जैसे महान् सूफियो और कवियो ने आगे बढ़ाया। अन्य प्रसिद्ध सूफी कवि (मामून रशीद के समय ई० सन् ८३० के लगभग), जुललून (म० ८५७ ई०) और मजीद (म० ८७४ ई०) हैं। वास्तव में गानिया और मंसूर के समय से गज्जाली के समय तक चार सौ वर्ष तक इस्लाम के भीतर ही सूफीमत का विकास होता रहा।

भारत में सूफीमत

दक्षिण भारत के लोग मुसलमानी दरवेशों (साधुओं) और सूफियों से बहुत पहले परिचित हो चुके थे। उमर के समय (६४२-६४४ ई०) में थाणा मुसलमानों (अरबियों) के शासन में आ गया परन्तु फिर भी कई शताब्दियों तक विदेशी मुसलमान सत्ता भारत के द्वार पर सिर टकराती रही। मुसलमानों की प्रगति इन तिथियों से स्पष्ट है—आलोर (७१२ ई०), मुलतान (७१३ ई०), लाहौर (१०२३ ई०) दिल्ली और अजमेर (११६१ ई०), कन्नौज (११६३), गौड़ और नवद्वीप (११६६), मिथिला (१३५१ के बाद), मालवा (१२६५ के बाद) कालिंजर (१५४५ ई०) और गुजरात (१२६७), यह स्पष्ट है कि आठवीं-नवीं दशवीं शताब्दी में बाहरी प्रभाव इतने प्रबल नहीं थे। देश का राजदंड सशक्त था। जो धार्मिक और सांस्कृतिक आन्दोलन इन्हीं तीनों शताब्दियों में उठे, वे देश की जागरूक शक्ति के प्रमाण थे। परन्तु धीरे-धीरे एक युद्ध व्यवसायी समाज का जन्म हो गया था। सामंत धीरे-धीरे विलासी हो गये। नवीं-दसवीं शताब्दी तक हमारा राजनैतिक संगठन इतना दृढ़ था कि विदेशियों की दृष्टि पड़ना कठिन बात थी। ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दियों में उत्तर भारत आधे दर्जन छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट गया। ये छोटे-छोटे राज्य लड़ने-झगड़ने और भूठी प्रतिष्ठा को ही अपना जीवन-व्रत समझने लगे। फल यह हुआ कि इस

हिन्दी सूफ़ी काव्य

हिन्दी सूफ़ी काव्य दो भाषाओं में हमारे सामने आता है। 'हिन्दवी' और 'हिंदी' (अवधी) ये दो भाषाएँ हैं। 'हिन्दवी' भाषा और साहित्य का इतिहास महत्त्वपूर्ण है। गुप्तकाल (३१६ ई०—४६८ ई०) में उत्तरी भारत में शौरसेनी, मागधी, पैंशाची, अपभ्रंश और महाराष्ट्री भाषाएँ चल रही थी और परस्पर व्यवहार के द्वारा इन भाषाओं के सामान्य रूपों को लेकर एक सामान्य भाषा ने जन्म लिया। सातवीं शताब्दी में राजपूत-गुर्जर सामंतों में इस भाषा का बहुत प्रचार हुआ और अनेक राजपूत गुर्जर ध्वनियों का समावेश हो गया। इस भाषा को अभा कोइ नाम नहीं दिया गया है परंतु चंद्र की 'षट्भाषा' का बहुत कुछ ढाँचा इस भाषा पर खड़ा होगा। राजपूतकाल (६०० ई०—१२००) में यह भाषा सारे उत्तर भारत और दक्षिण में कोकन प्रदेश तक सामान्य आदान-प्रदान की भाषा रही होगी। इसे हम प्राचीन हिंदवी या प्राचीनतम खड़ी बोली कह सकते हैं। और खुसरों (१२५३ ई० १३२५ ई०) ने अपने समय की उत्तर-भारत की भाषाओं में लाहौरी और दिल्ली और उसकी आस-पास की भाषाओं का उल्लेख किया है। मुसलमानों के आने तक इस सामान्य भाषा का कोई साहित्य नहीं था। वह सामान्य बोलचाल की भाषा-मात्र थी। यह सामान्य भाषा लाहौर, मुलतान और दिल्ली की भाषाओं से बहुत कुछ मिलती-जुलती रही होगी। ग्यारहवीं शताब्दी तक पंचनद प्रदेश में

इस्लाम धर्म का काफ़ी प्रचार होगया था और हीनवर्ण हिन्दू इस नये धर्म को बड़ी संख्या मे अपनाने लगे थे। राहुल सांकृत्यायन ने 'हिदी काव्यधारा' मे मुलतान के जुलाहे हिदी कवि अब्दुर्रहमान (१०१० ई०) का उल्लेख किया है। अब्दुर्रहमान (१०१० ई०) से कुतबन (१४६३ ई०) तक की प्रायः पाँच शताब्दियों मे हम फ़िसी मुसलमान हिदी कवि की रचना नहीं पाते।

परन्तु इन ५०० वर्षों मे मुसलमान राजपूत-गुर्जर सामान्य भाषा (हिंदवी) को लेकर थोड़ी-बहुत साहित्य-रचना अवश्य कर रहे थे, इसके समर्थन के लिए प्रमाण ढूँढना कई कठिन काम नहीं है। जैसा राहुल जी ने लिखा है, हिन्दुस्तान की खान से पैदा हुए सभी मुसलमानों के लिए अरबी-फारसी का पढित होना संभव नहीं था। अतः वे सामान्य बोलचाल की भाषा की ओर झुके और उसी में उन्होंने इस्लाम मत का प्रचार किया। इस नई भाषा को अपनाने मे काफ़ी समय लगा। इसी से हिदवी काव्य महमूद गज़नवी की विजयो के बहुत बाद शुरू होता है। डा० मोहन सिंह के अनुसार 'हिदवी कविता' का समय १७३६ ई०—१५२० ई० है। इस हिदवी कविता के अनेक कवियों की रचना अब उपलब्ध हो गई है। इन कवियों की तीन श्रेणियाँ है :

(१) फारसी के महत्वपूर्ण कवि, परन्तु हिन्दी की रचना मन बहलाव के लिए करते थे जैसे मसूद और खुसरो।

(२) सूफ़ी कवि जैसे फरीद शकरगंजी

(३) 'पीर' कवि जिनका मुख्य उद्देश्य इस्लाम का प्रचार था जैसे सैयद मुहम्मद गैसूदराज बन्दानवाज़ (मृ० १४८१, दकन)। ये लोग अरबी-फारसी के विद्वान थे और वे धर्मप्रचार

के लिए लोक-भाषा में रचना करते थे। लाहौर, दिल्ली और मुलतान इन दिनों मुसलमान धर्म-प्रचारकों के केन्द्र थे और यह हिंदी का काव्य इन्हीं केन्द्रों से संबंधित है।

यह हिंदवी काव्य नागपंथियों और संतों के काव्य से बहुत भिन्न नहीं है। भाषा में अंतर केवल इतना है कि हिंदवी काव्य में अरबी-फारसी के शब्द अधिक मात्रा में प्रयोग में आये हैं। दोनों का विषय धर्म है। हिंदवी काव्य में हिंदी छंदों का ही प्रयोग हुआ है। उपमाएँ उत्प्रेक्षाएँ भी भारतीय परंपरा से ली गई हैं। योग, वेदान्त और आत्मबोध-संबन्धी हिंदी और संस्कृत शब्दों का प्रयोग खूब रहा है। अरबी-फारसी शब्द तद्भव रूप में आते हैं और शब्दों के प्रयोग में कवि स्वतंत्रता से पूर्णतः काम लिया जाता है। शैली भी भारतीय है। कहीं प्रश्नोत्तर से काम लिया गया है, कहीं कहानी से, कहीं भट्ट भणंत में। सूफी विचारधारा के भारतीय रूप के विकास के लिए हमें इस साहित्य का ऋण स्वीकार करना पड़ेगा। बाबा फरीद की हिंदवी कविताओं को आदिग्रन्थ (१६०६ ई०) में महत्वपूर्ण स्थान मिला है। इससे इस कविता के महत्व का पता चलता है। इनके बाद दूसरे महत्त्वपूर्ण सूफी बंदानवाज गेसूदराज (१३१८-१४२१) है। सूफी साहित्य में इनके हिंदवी ग्रंथ मैराजुन आशकीन (१३६८) का बड़ा महत्व है।

जैसा हम पहले बता चुके हैं, मुसलमानी सूफी संतों का आगमन विदेशी आक्रमण के पहले ही हो गया था, परंतु राज-सत्ता स्थापित हो जाने के बाद उन्हें विशेष प्रश्रय मिला। मूल मुसलमानी धर्म 'तौहीद' (एकेश्वरवाद) का प्रचारक है। "ला इलाही इल्लाह मोहम्मद रसूल अल्लाह ।" परंतु यह एकेश्वरवाद भारतीय अद्वैतवाद से भिन्न है। अद्वैतवाद में जिस प्रकार जीव और ब्रह्म की अविच्छिन्न एकता की कल्पना की

गई है, उस तरह की बात यहाँ नहीं है। वहाँ खुदा, रसूल और इन्सानो की अलग-अलग सत्ता है। वास्तव में रसूल ईश्वर से अधिक निकट विशिष्ट मानव है जिसके माध्यम से साधारण जीव-खुदा तक पहुँचता है। यह एक प्रकार से 'द्वैत' हुआ, यद्यपि मुसलमान विचारक इस बात को यों स्वीकार नहीं करते। जब फारस पर मुसलमानों का राज्य स्थापित हो गया और सारी जनता मुसलमान हो गई, तो इस्लाम पूर्णरूप से शुद्ध भी नहीं रह सका। फारस में जो धर्म प्रचलित था, वह आर्य ही था, अतः मौलिक रूप से भावप्रवण था। नवमुसलिमां में एक गिरोह ऐसा उठ खड़ा हुआ जो खुदा और इन्सानों को वहदत (एकता) को मानता था। इसका दृष्टिकोण बहुत कुछ विशिष्टा-द्वैतवादियों जैसा था। संभव है उस पर वेदांत का प्रभाव हो। कट्टर मुसलमान उसे 'बेशरा' (शरियत या इस्लाम धर्मशास्त्र के विरुद्ध) मानते हैं। इसलिए सूफियों में एक दल ऐसा भी उठ खड़ा हुआ जो इस्लामी धर्मशास्त्र को दृष्टि में रखता हुआ उपासना करता था। उन्हें कट्टर मुसलमानों ने भी स्वीकार कर लिया और 'बाशरा' (शरियत के अनुरूप) कहा।

शुरू-शुरू में सूफी साधक सिंध और पंजाब में आकर बसे थे। यह वह समय था जब भक्ति का अविर्भाव हो चुका था और वह धीरे-धीरे एक जन-आंदोलन का रूप धारण कर रही थी। सूफियों की प्रेम-मूलक धारणा भक्ति से मेल खाती थी, अतः वह जन-समाज में अपने साधना के बल से पैठ गये। अनेक हिन्दू उनपर आस्था रखने लगे। इन सूफियों में मुईन-उद्दीन (११४२ ई०), कुतुबुद्दीन करकी, फरीद शकरगज (१२०० ई०), शेख चिश्ती (१२६१ ई०), निजामुद्दीन औलिया (१२३५ ई०), सलीम चिश्ती (१५१२ ई०) और मुबारिक नागोरी (१५१० ई०) प्रसिद्ध हैं। धीरे-धीरे इनकी

शिष्य-परंपरा बढ़ी और यह सारे उत्तर और दक्षिण भारत में फैल गये। भारत में आने से पहले सूफियों का एक अपना साहित्य चल पड़ा था। वह बराबर आता रहा। मुसलमानों के शासनकाल में ईरानी संस्कृति और साहित्य भारतवर्ष में बराबर आते रहे। इस तरह साधक फारसी सूफियों की सद्य-विकसित भावनाओं से बराबर परिचित होते रहे। परन्तु भारतीय धार्मिक वातावरण, दार्शनिक चिंतन और साहित्य का भी इन पर प्रभाव पड़ता रहा।

हिन्दी साहित्य में सूफी-साधना दो भाषाओं में व्यक्त हुई। (१) हिन्दी या खड़ी बोली (ब्रज, पंजाबी, दकनी और अन्य प्रांतीय बोलियों से मिश्रित), (२) अवधी। खड़ी बोली में सूफी साहित्य फुटकर पदों, दोहों और गजलों आदि के रूप में रखा गया। पश्चिमी और दक्षिणी भारत में इस प्रकार की रचनाएँ प्रचुर मात्रा में हुईं। पूर्वी हिन्दी प्रदेश में अवधी के माध्यम द्वारा यह प्रकाश में आईं। दोनों भाषाओं में “मसनवी” (कथात्मक) साहित्य की रचना हुई। परन्तु खड़ी बोली की मसनवीया “दकनी” (फारसी और ब्रजभाषा मिश्रित खड़ी) में है और उनपर भारतीय कथापद्धति और काव्य का उतना प्रभाव नहीं है, जितना पूर्वी साधकों की अवधी कथाओं में जान पड़ता है। जो कथाएँ इन साधकों ने पदबद्ध कीं, वे मौलिक रूप से भारतीय थीं और जनसाधारण में लोककथाओं के रूप में चली आ रही थीं। उन्होंने उनके प्रभाव को समझ कर उन्हें अपने भावों के प्रचार का साधन बनाया होगा।

हिन्दी और दकनी सूफी साहित्य

१४०० ई० तक मुलतान और लाहौर मुसलमान सूफी संतों के केन्द्र बने रहे और इन्हीं केन्द्रों में हिन्दी सूफी-साहित्य का

हिन्दी सूफी काव्य

जन्म हुआ। उत्तरी भारत में हिन्दुओं और मुसलमानों ... भाषाओं का मेल-जोल सुबतगीन गज़नवी के समय से ही आरंभ हो गया था। लाहौर की विजय के बाद गज़नवी फौज में हिंदू सैनिक भी रहने लगे थे। इसी तरह हिंदू राजाओं के यहाँ मुसलमान फौजे और सिपहसालार नौकर थे। इस तरह नई परिस्थितियों के कारण स्थानीय भाषाओं में अरबी, फारसी, तुर्की के शब्दों का आगम हुआ। सत्रहवीं शताब्दी में भाषा का इतना बाहुल्य हो गया था कि रासो के वर्तमान रूप में हजारों ऐसे शब्द आये हैं। गज़नवी राजदरबार में हिंदू राजपूत बराबर आते-जाते रहते थे और इसी समय अफगान मुसलमान हजारों-लाखों की संख्या में पंजाब में आ बसे। इनकी उपस्थिति का भाषा पर प्रभाव पड़ना आवश्यक था। ये मुसलमान पंजाबी, हिंदवी, मिली फारसी बोलते होंगे। १३वीं शताब्दी में लाहौर के मुसलमान कवि मासूद साद सलमान ने एक हिन्दी दीवान (कविता-संग्रह) छोड़ा है, इसका उल्लेख मिलता है। इस मिश्रित भाषा में सबसे पहली उपलब्ध रचना सिध में लिखी गई। आज यह अरबी, फारसी और हिन्दुस्तानी की अजीब ग्विचड़ी जान पड़ती है। दैनिक, व्यापारिक और सांस्कृतिक मेल-जोल के साथ-साथ देशी और विदेशी भाषाओं में आदान-प्रदान बढ़ा। धीरे-धीरे लोग ऐसी जुबान बोलने लगे, जो हिंदू और मुसलमान दोनों की समझ में आ सकती। यह जन-भाषा हिंदी थी। इसमें क्रिया, कारक इत्यादि सब हिंदोस्तानी हैं—अरबी-फारसी की संज्ञाएँ। परंतु इनकी संख्या भी बहुत अधिक नहीं थी। लगभग २०० वर्ष तक यह नई जुबान लाहौर में पनपी। जब ११४२ ई० में मुसलमानों ने चौहानों पर विजय प्राप्त कर ली तो दिल्ली-मेरठ की खड़ी बोली और ब्रजभाषा से इस मिश्रित भाषा का संपर्क हुआ। पूर्वी पंजाब की बाँगड़ और हरियानी

भाषाओं का भी प्रभाव पड़ा। इस मिश्रित नई भाषा (हिंदवी) का पहला प्रतिष्ठित कवि अमोर खुसरो (१२५३-१३२५) है। खुसरो का अधिकांश सूफी काव्य फारसी में है।

१४०० ई० के बाद हिंदवी भाषा और साहित्य का विशेष रूप से विकाम हुआ। इस समय इस भाषा का मुख्य केन्द्र दक्षिण था और यह दक्षिणी नाम से प्रसिद्ध थी। इस युग का भी मुख्य साहित्य आध्यात्मिक (सूफी) है। इसके रचयिता प्रसिद्ध पीर या सूफी है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण है सैयद मुहम्मद गैसूदराज बन्दानवाज (मृत्यु० १४२१ ई० दकन) बाबा फरीद (१६०६ ई०, पंजाब), शाह मीरान जो शमसुल उशशाक (मृ० १४६१), शाहबुरहान (मृ० १५८२ ई०), अमीनुद्दीन आला (१५८२-१६७५), और मुहम्मद कुली कुतबशाह (१५८०-१६११)। १३वीं शताब्दी ईसवी में दकन इसलामी सूफी कवियों का केन्द्र बन रहा था और साधारण जनता में उनकी विशेष मान्यता थी। इन सूफी संतों का भाषा और साहित्य पर कई शताब्दियों तक प्रभाव रहा। मलिक काफ़र (१२६४-१३११), मुहम्मद तुग़लक़ (१३३६) और हसनगंगू की विजयी सेनाओं के साथ हिंदवी भाषा और संस्कृति और उत्तर का सूफी साहित्य दक्षिण पहुँच गया था। कबीर के समय (मृ० १३६८ ई०) तक हिंदी भाषा में भी सूफी साहित्य की काफी रचना हो चुकी थी। स्वयं कबीर के साहित्य में सूफी भावना सैकड़ों पदों में प्रकाशित हुई है।

दकनी के सूफी-काव्य में हमें उसी 'प्रेम की पीर' के दर्शन होते हैं जो जायसी आदि हिंदी सूफियों में मिलती है। यह सूफी काव्य विशेषतः मसनवियों (प्रेम-कहानियों) के रूप में मिलता है। मसनवियों में लौकिक प्रेम की कहानी को पारमार्थिक प्रेम के रूपक के रूप में ग्रहण किया गया है। परंतु १४००—१६००

तक 'खुशनाम' और 'खुशनाज' (शाह मीरानजी की कृतियाँ) नाम को मसनवियों को छोड़कर और कोई महत्वपूर्ण रचना प्रकाश में नही आई। इन मसनवियों में भी रूपक अत्यंत शिथिल है। जायसी आदि कवियों का काव्य 'हिंदी मसनवियाँ' रही है। इस दृष्टि से इन प्रारंभिक मसनवियों का अध्ययन थोड़ा बहुत महत्व अवश्य रखता है। दकन का यह सूफी-साहित्य हिंदी भाषा के विकास की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। इसमें हिंदी मुहावरे, हिंदी शब्द, हिंदी साहित्य-परंपरा, हिंदी भाषा सब अपने विकृत रूप में मिलते हैं। १६०० ई० तक दकनी में जो साहित्य बना वह एकदम धार्मिक है। इसे सूफियों और पोरों का साहित्य कहना चाहिये। अधिकांश साहित्य गद्य में है जो खड़ी बोली गद्य के विकास के अध्ययन के लिये महत्वपूर्ण है परंतु पद्य भी कम नहीं है। इस धार्मिक साहित्य में साहित्यिकता की मात्रा बिल्कुल नहीं हो, यह बात नहीं। हाँ, मूल प्रेरणा धार्मिक है, लक्ष्य प्रचार या साधना, अतः साहित्य अधिक नहीं है। इस धार्मिक साहित्य की परंपरा में सबसे महत्वपूर्ण नामशाह बुरहान के पुत्र अमीनुद्दीन आला (१५८२—१६७५) का है।

अवधी सूफी काव्य

अवधी में सबसे पहला सूफी प्रेमाख्यानक काव्य मुल्ला दाऊद की नूरक और चंदा की प्रेमकथा है। इसका रचना-काल सं० १३०५ (१३१८ ई०) है। इसके बाद और भी कई प्रेम-कथाएँ लिखी गईं परंतु उनमें से सब उपलब्ध नहीं हैं। जायसी ने पद्मावती में सपनावती, मुग्धावती, मृगावती, खंडरावती, मधुमालती और प्रेमावती का उल्लेख किया है — ।

विक्रम फँसा प्रेम के बारा ।
 सपनावति कहँ गएउ पतारा ॥
 मधुपाद्द मुगुधावति लागी ।
 गगन पूर होइगा बैरागी ॥
 राजकुँवर बेचनपुर गयऊ ।
 मिरगावति कहँ जोगी भयऊ ॥
 साधु कुँवर खडरावत जोगू ।
 मधुमालति कर कोन्ह वियोगू ॥
 प्रेमावती कहँ सुरसरि साधा ।
 ऊषा लागि अनिरुध बर बाँवा ॥

इनमें से केवल दो मृगावती और मधुमालती प्राप्त हो सकती हैं । मृगावती के लेखक कुतबन है । मधुमालती के भंफन । कुतबन का समय १२६३ ई० है । भंफन के समय के विषय में कुछ पता नहीं चलता । इसके बाद मलिक मोहम्मद जायसी का पद्मावत आता है । पद्मावत का रचनाकाल १५३३ ई० है । इस प्रकार यह सिद्ध है कि सूफी रूपकत्मक प्रेम-कथाओं की परंपरा जायसी

* इसमें ऊषा-अनिरुद्ध की कहानी तो पौराणिक है, शेष कथाएँ निश्चय ही सूफी-साहित्य की संपत्ति हैं । जायसी ग्रंथावली की भूमिका में पं० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—इनमें मृगावति की एक खंडित प्रति का पता नागरी प्रचारिणी सभा को लग चुका है । मधुमालती की भी फारसी अक्षरों की लिखी हुई एक प्रति मैंने किसी मज्जन के पास देखी पर किसके पास, यह स्मरण नहीं है । चतुर्भुज दास कृत 'मधुमालती' की कथा नागरी प्रचारिणी सभा को मिली है जिसका निर्माण काल ज्ञात नहीं है । 'मुगुधावती' और 'प्रेमावती' का पता अब तक नहीं लगा है ।

से बहुत पहले चल पड़ी थी। जायसी की लोकप्रियता ने इस परंपरा को प्रोत्साहन दिया। उनके बाद कई प्रेमाख्यान लिखे गये और यह परंपरा उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ तक चली। पद्मावत के बाद उसमान ने चित्रावली (१६१३ ई०) लिखी। १६१६ में शेख नबी ने ज्ञानदीपक लिखा। १७३१ में कासिमशाह ने 'हसजवाहर', १७४४ ई० में 'नूर मुहम्मद' ने 'इद्रावती' और १८४८ ई० में फाजिलशाह ने 'प्रेमरतन' की रचना की। दो अन्य प्रसिद्ध सूफी काव्य माधवानल कामकंदला (आलम १६०५ ई०) और यूसुफ जुलेखा (निसार, १८१६ ई०) हैं। इन सूफी अवधी प्रबंधरचयिताओं में जायसी ही सब से प्रधान हैं। जायसी के पद्मावत की कथा-वस्तु ऐतिहासिक है, परंतु यह नहीं समझना चाहिये कि उन्होंने इसे इतिहास के अध्ययन से प्राप्त किया है। वास्तव में उन्होंने कथा का वही रूप अपनाया जो अवध में लोकगीतों और कथाओं के रूप में प्रचलित था। यही कारण है कि उसमें इतिहास विरुद्ध घटनाएँ मिलती हैं। सच तो यह है कि अधिकांश सूफी कवियों के कथानक लोककथा से लिये गये हैं या उनपर आश्रित हैं।

इन सब अवधी प्रेम कथाओं में बहुत साम्य है। सब दोहा-चौपाइयों में लिखी गई हैं। सब में मसनवियों की शैली अपनाई गई है—ईश्वर-बंदना, मोहम्मद साहब की स्तुति, शाह वक्त का वर्णन आदि। सब की भाषा अवधी है। सब में सूफी भावना अतिरिक्त है। फारसी प्रेमकथाओं में पहले पुरुष की स्त्री पर आसक्ति दिखलाई जाती है। इतना विदेशीपन होने पर भी षट्शतु वर्णन, बारहमासा, नगरवर्णन, स्त्री-सौन्दर्य वर्णन आदि अनेक बातों और रस्म-रिवाजों में भारतीय परंपरा का अनुसरण किया गया है। ये मुसलमान साधक कवि जीवात्मा के विरह का बड़ा सुन्दर चित्रण उपस्थित कर सके हैं।

सारा काव्य प्रेम की तन्मयता से व्याप्त है । इन प्रेम-साधकों ने कथा को ही साधन बना लिया है ।

✓ (इन सूफियों के साहित्य को काव्य की दृष्टि से हम हिंदी का पहला रोमांस काव्य कह सकते हैं) । इस काव्य में एकांतिक प्रेम का चित्रण किया गया है । रोमांस की तरह इन काव्यों का नायक अनेक घटनापूर्ण कठिन परिस्थितियों में से गुजर कर अपनी प्रेमिका को प्राप्त करता है । प्रकृति के प्रति इनका दृष्टिकोण अत्यन्त रहस्यात्मक है और अंग्रेजी काव्य के १६वीं शताब्दी के कवियों से मिलना-जुलना है । जो हिंदी सूफी साहित्य हमारे सामने है, वह फारस के सूफीमत काव्यों का तो हमारे सामने नहीं रखता परन्तु वह फारस में विकसित सूफीमत की साहित्यिक अभिव्यक्ति है और उस पर वेदांत का प्रभाव है) । “इसमें तो कोई शक नहीं कि मुसलमान सूफियों पर, भारत में आने के बाद हिंदू वेदांतियों का प्रभाव पड़ा ।” (मौलाना सैयद सुलेमान नदवी (अरब और भारत के सम्बन्ध, पृ० २०३)

✓जायसी का ग्रन्थ (पदमावत, १५३३) तत्कालीन अवधी को हमारे सामने रखता है । अतः इस दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है । उन्होंने प्रत्येक स्थान पर शब्दों के प्रचलित बोलचाल के रूपों का प्रयोग किया है । संस्कृत का ज्ञान न होने और काव्य-शास्त्र का अधिक सहारा न लेने के कारण भाषा का स्वाभाविकता बनी रह सकी है । जायसी में वेदांत के सिद्धांत भी मिलते हैं, विशेषकर अखरावट में परन्तु जायसी को स्वाभाविक धार्मिक भूमि सूफी धर्ममार्ग है । “सारी कथा के पीछे सूफी सिद्धांतों की रूपरेखा है परन्तु जायसी इस आध्यात्मिक सकेत को पूर्ण रूप से निबाह नहीं सके हैं ।” सच तो यह है कि कथा-प्रसंग और आध्यत्मिक सकेत को एक साथ

चलाना बड़ा कठिन होता है। जायसी ने कथा-प्रसंग के बीच-बीच में पाठक को बार-बार आध्यात्मिक पक्ष का ध्यान दिलाया है, एवं इसके अतिरिक्त अंत में सन्नेप में सारी कथा पर आध्यात्मिकता का आरोप कर दिया है, परंतु फिर भी बहुधा वर्णनों के विस्तार में यह लक्ष्य आँख की ओर हो जाता है। जायसी के ऊपर हठयोग और संतमत का प्रभाव भी लक्षित है। हठयोग की लगभग पूरी पद्धति का विवेचन उनके ग्रंथ में हो गया है। इससे स्पष्ट है कि जायसी के समय में उनके प्रदेश में हठयोग की धारा बलवती थी।

पद्मावत के साहित्य पक्ष पर हिन्दु और मुसलमान दोनों साहित्य-धाराओं का प्रभाव पड़ा है। (१) हिन्दू साहित्य धारा का प्रभाव—पद्मावत को महाकाव्य के ढंग पर रखने का प्रयत्न किया गया है। ग्रीष्म-वर्णन, समुद्र-वर्णन, विवाह वर्णन, युद्ध-वर्णन, भोजन-वर्णन, गढ़-वर्णन। षट्शतु और बागहमासा वर्णन मिलते हैं जो इसी ओर इंगित करते हैं। इनके अतिरिक्त हीरामन तोता, नागमती एवं प्रेम-चित्रण में भी हिन्दू साहित्य ग्रंथों के आदर्श और हिन्दू सङ्कृति को अपनाया है। (२)—मुसलमान साहित्य-धाराओं का प्रभाव—पद्मावत की शैली मसनवी की है। मसनवी 'द्विपाद' (चौपाई) छंद होता है। जायसी ने चौपाई की अर्धालिका का इसी रूप में प्रयोग किया है। फारसी मसनवी-काव्या में ५-७ छंदों के बाद विराम देते हैं। जायसी ने सात अर्धालिकों को बाद एक दोहा लिखा है। मसनवियाँ भी प्रेम-कहानियाँ होती हैं। अधिकांश में सूफी आध्यात्मिक प्रेमपक्ष की व्यञ्जना होती है। पद्मावत में भी आरम भी उसी रूप से किया है जो मसनवियों में मिलता है। १ ईश्वर स्तुति, २ मुहम्मद स्तुति, ३ सुलतान-स्तुति, ४ आत्मपरिचय, ५ कथा-भाग। मसनवी वर्णनात्मक है,

इसी से कही-कही वर्णन का विस्तार बहुत अधिक हो जात है। यह बात पद्मावत में है। प्रेम का प्रसंग भी फारसी प्रेम-शैली पर है। पद्मावती के रूपवर्णन से ही राजा मूर्छित हो जाता है। इसके अतिरिक्त विरह-वर्णन में भी फारसी शैली के अनुसार प्रेम का काठिन्य दिखाने के लिए कवि औचित्य और स्वाभाविकता का सीमाओं को लाँघ गया है। रूपवर्णन में भी अतिशयोक्ति का प्रयोग स्वाभाविकता में बाधा डालता है।)

(इन सूफी कवियों ने प्रेम और विरह के बड़े सुन्दर चित्र उपस्थित किये हैं)— उनकी प्रेम की परिभाषा बड़ी ऊँची है—

अलष प्रेम-कारन जग कीन्हा ।
 वन जो सीस प्रेम कहँ दीन्हा ॥
 जाना जेहिक प्रेम महँ हीया ।
 मरै न कब हूँ सो मरजीया ॥
 प्रेम खेत है यह दुनियाई ।
 प्रेमी पुरुष करत बोवाई ॥
 जीवन जाग प्रेम को कहई ।
 सोवन मीचु बो प्रेमी अहई ॥
 आग तपन जल चाल समूभो ।
 पुनि टिकाउ मॉटी कहँ बूभो ॥

हौ प्रेमी है प्रेम को, चंचलताइ काय
 जा मन जाया प्रेमरस, भा दोउ जग को राय

(नूरमुहम्मद) ।

परंतु उनका प्रेम लौकिक नहीं है, वह ईश्वरोन्मुख है। उन्होंने कथाओं का आश्रय लेकर प्रतीक रूप में उस प्रेम को प्रकट करने का चेष्टा की है और वे सफल भी हुए हैं। उस प्रेम के लिए गुरुभक्ति के द्वारा इतना पूर्ववर्गा, साधना की कठिनाइयाँ

(प्रलोभन और कष्ट), आध्यात्मिक विरह (वियोग), आध्यात्मिक प्राप्ति (सयोग)—इस क्रम से कथासूत्र बाँधा गया है । कथाएँ अधिकांश हिंदू जीवन से ली गई हैं । जायसी के पद्मावत के पूर्वार्द्ध को छोड़कर शेष कथाएँ अनैतिहासिक हैं । या तो वे कवि के मस्तिष्क को उपज है या वे जन-समाज में प्रचलित लोक-कथाओं का परिमार्जित एवं परिवर्द्धित रूप है ।

परंतु प्रेम का जो रूप इन कथाओं में है वह भारतीय काव्य-परंपरा से कुछ दूर पड़ता है—पहली बात है निराधार पूर्वराग । गुणश्रवण द्वारा पूर्वराग की उत्पत्ति हमारे शास्त्रकार मानते हैं परंतु नायिका के सौन्दर्य की बात सुनकर नायक को मूर्च्छा आये, यह कल्पना की दूर की कौड़ी है । सूफियों (सूफी-कवियों) ने अध्यात्म को सामने रखा है, अतः वे यहाँ तक बढ़ गये । दूसरी बात है पुरुष का प्रयत्नशील होना । भारतीय काव्य-परंपरा में नायिका नायक से मिलने के लिए प्रयत्नशील होती है, उसमें उसके अभिसार की कठिनाइयों की चर्चा है, प्रेमोत्कर्ष के लिए ये कठिनाइयाँ बढ़ भी सकती हैं । परंतु सूफी कवियों ने नायक को प्रेमपरीक्षा देते हुए चित्रित किया है । इसका कारण यह है कि उनके काव्य में नायिका चिन्मय सत्ता के प्रतीक के रूप में आती है । जीव-रूप नायक उसे पाने के लिए कटिबद्ध है । इम नये ढंग से वे भारतीय परंपरा से तो हट गये, परंतु वे चिन् सत्ता के सौन्दर्य की व्यंजना अलौकिक नारी रूप की सृष्टि द्वारा सफलता से कर सके हैं ।

“कोई राजकुमार किसी राजकुमारी के रूप-गुण की प्रशंसा सुनकर या प्रत्यक्ष या स्वप्न या चित्र में देखकर आकर्षित होता है । उधर भी यही हालत होती है । अंत में वह उसकी खोज में चल पड़ता है । प्रायः उसे कोई मार्ग-प्रदर्शक भी मिल जात

है। यह अधिकतर राजकुमारी का भेजा हुआ कोई दूत या दूत का काम करने वाला कोई पक्षी या तोता हुआ करता है। कई बार उसे फलागम होते-होते ऐसा कोई विघ्न या कोई ऐसी भूल उससे होती है जिससे उसकी उद्देश्य-सिद्धि फिर एक अनिश्चित काल तक के लिए रुक जाती है।” (हिंदी के कवि और काव्य, भाग ३, पृ० ८-९) मृगावती, मधुमालती और पद्मावती की कहानियाँ इसी तरह की हैं। इनमें से सब से विकसित ‘पद्मावत’ की कथा है।

यूसुफ-जुलैखा (१८१६ ई०) तक आते-आते सूफी इंगित का लोप हो गया था और केवल कथा-मात्र कह डालने की प्रवृत्ति रह गई थी। वास्तव में यूसुफ जुलैखा की कथा को हम सूफी कथा-काव्य नहीं कह सकते। उसे एक सहृदय मुसलमान ने पुत्र-शोक हलका करने के लिए लिखा है। उसके मूल में न सूफियों की रहस्य-भावना है, न उसमें कोई प्रतीकार्थ हैं। संसार की अनश्वरता दिखाना ही कवि का ध्येय है। “यूसुफ-जुलैखा जैसे प्रेमियों की कथा ही रह गई—” कवि इस विचार से अपनी दुखी आत्मा में सतोष भर रहा है। परंतु यह स्पष्ट है कि लेखक सूफी कथा-काव्यों से भली भाँति परिचित था और ग्रंथ की भाषा-शैली मसनवी ढंग का ही है। जिन सिद्धांतों का उसने उल्लेख किया है, वे साधारण मुसलमानों में प्रचलित हैं और उन्हें सूफियों का मत नहीं कहा जा सकता। इस थोड़े से साम्य के सिवा ग्रंथ में कुछ ऐसा नहीं है जो उसे सूफी काव्यों की कोटि दे। ‘माधवानल कामकंदला’ (१६०५ ई०) के संबंध में भी यही बात कही जा सकती है। उसमें तो कथा का विकास भी बहुत संक्षेप में होता है। प्रच्छन्न रूप से सभी प्रेम-काव्यों को सूफी काव्य माना जा सकता है, परंतु माधवानल-कामकंदला में आध्यात्मिक रूपक देने की बात कवि ने सोची

भी नहीं है। बात यह है कि मध्ययुग की एक प्रवृत्ति कथाओं की प्रियता भी थी। इन कथाओं की सृष्टि इसी लोकहृत् की पूर्ति के लिए हुई है। रचना खूब लोकप्रिय थी, अतः कवियों ने उसे ही आदर्श माना, यद्यपि वे अपने काव्य में स्पष्टतय-आध्यात्मिक संकेत से काम नहीं लेते।

जो हो, हमें यह मानना पड़ेगा कि सूफी-मत ने भारतीय जनता को प्रभावित किया। नए मतावलम्बी उसकी ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुए। उन्होंने लोक में प्रचलित, कभी कल्पना-प्रसूत रचनाओं को द्वारा अपने सिद्धांतों को प्रगट करने की मौलिकता दिखाई और ऐसे कवियों की एक छोटी-मोटी परंपरा कुछ दिन चली। मुसलमानों में सूफी प्रेम-कथाएँ इतनी प्रचलित हुईं कि उन्होंने उन्हें अपनी कथाओं के लिए आदर्श माना—भाषा, छंद, शैली और गठन की दृष्टि से—यद्यपि उनकी कथाएँ सूफी काव्य के अंतर्गत न आकर सामान्य आख्यानक काव्य के भीतर आती हैं।

✓ सूफी रहस्यवाद को जिन कवियों ने अपना आधार माना है उनमें जायसी सर्वश्रेष्ठ हैं। उन्होंने कथा का रूप विकृत नहीं किया है, लोक-प्रचलित रूप ही दिया है। हाँ, उस पर 'आध्यात्मिक अर्थों' का आरोपण अवश्य है—✓

मैं एहि अरथ पडितन्ह बूझा। कहा कि हम किछू और न सूझा ॥
तन चितउर, मन राजा कीन्हा। हिय सिघल, बुधि पदमिनि चीन्हा ॥
गुरु सुआ जो पन्थ दिखावा। बिना गुरु को निरगुन पावा ॥
नागमती एहि दुनिया धधा। बोंचा सोइ न एहि चित बधा ॥
राषव दूत सोई सैतानू। माया अलाउदी सुलतानू ॥
प्रेम कथा ऐहि भाँत विचारहु। बूझि लेउ जो बूझै पारहु ॥
इस प्रकार तन = चित्तौड़ ; मन = राजा ; हिय = सिंहलद्वीप ;

बुद्धि = पद्मिनी , गुरु = तोता (हीरामन), नागमती = जगज्जाल ; राघव = शैतान , माया = अलाउद्दीन । (परन्तु जायसी आदि सूफी कथाकारों ने अपने सूफी विचारों को मूल कथा के साथ साथ ही प्रगट किया है । उन्होंने अत मे जो अर्थ आरोपित किए हैं, वे अधिक स्पष्ट नहीं है । सूफी कवियों ने विरह को उसी प्रकार प्रधानता दी है जिस प्रकार संत कवियों ने । जब कवि लौकिक विरह के संबंध मे लिखने लगता है तो उसकी दृष्टि मे आध्यात्मिक विरह ही होता है—

विरह अवधि अवगाह अपारा ।
 कोटि माहि एक परै त पारा ॥
 विरह कि जगत अबिरथा जाही ?
 विरह रूप यह सृष्टि सबाई ॥
 नयन विरह अंजन जिन सारा ।
 विरह रूप दर्पन संसारा ॥
 कोटि माहि विरला जग कोई ।
 जाहि सरीर विरह दुख होई ॥

रतन कि सागर मागरहि ? गजमोती गज कोय ।

चदन कि बन-वन उपजइ ? विरह कि तन-तन होय ? ।

(मझन)

वे नारी-सौन्दर्य मे परमात्म-शक्ति की स्थापना करते हैं—वास्तव मे सूफी संतों के अनुसार सांसारिक विभूतियों का आधार परमात्म सत्ता ही है । इस संसार की प्रत्येक सुन्दर वस्तु के पीछे, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष या प्रकृति या कोई कार्यव्यापार विशेष, ईश्वर है या उसकी प्रेरणा है । इसी कारण सूफी संसार की असारता की घोषणा करते हुए भी उसका ओर घृणा

की दृष्टि से नहीं देखते जिस घृणा का दृष्टि से उसे संत देखते हैं। उनके लिए नारी-सौन्दर्य भी सत्य है, प्रकृति भी सत्य है। दोनों अध्यात्म की ओर इंगित करन है, अतः किसी विशेष अवस्था में उपादेय अथवा संग्रहणीय भा हो सकते हैं। मंभन कहते हैं—

देखत ही पङ्चानेउँ तोही
 एही रूप जेहे छुदरयो मोही
 एही रूप बुन अहै छिपाना
 एही रूप रव सृष्टि समाना
 एही रूप सकती औ सीऊ
 एही रूप त्रिभुवन कर जीऊ
 एही रूप प्रगटे बहु भेमा
 एही रूप जग रंऊ नरेमा

सूफी कवियों ने जिन कथाओं का आश्रय लिया, वे कथाएँ पूर्णतय भारतीय हैं। उनके नायक-नायिका ही भारतीय नहीं हैं, उनके जीवन की अनेक परिस्थितियाँ भी भारतीय हैं। उनके नायक नायिकाओं के कार्यों का आधार भारतीय (हिंदू) विश्वास है। यदि कथा पर से विदेशी धार्मिक सिद्धांत (सूफीमत) का आवरण हटा लिया जाय, उसे केवल प्रेम-कथा-काव्य के रूप में देखा जाय तो हिंदू जीवन की इतनी अधिक परिस्थितियाँ तुलसी को छोड़कर और कहीं नहीं मिलेंगी। जायसी को ही लीजिये। नैहर में लड़की की मृत्यु चहल-पहल, सुसराल का चितन, पुत्री के विदा के समय की परिस्थिति, प्रेम और वियोग में भारतीय ललना की मनोवृत्ति, आस्तिक विश्वास, बलिदान, युद्धों में वीरों की मनोस्थिति—अनेक प्रसंग ऐसे ही जो पूर्णतय एतद्देशीय हैं। उन सब के लिये सूफी कवि हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। हिंदू

संस्कृत का त्रिजातीय (त्रिधर्मी अधिक ठीक होगा) लेखनी में इतने सुन्दर रूप में चित्रित होना तो आश्चर्य की बात है ही, परंतु इतनी सहृदयता पा जाना तो हमें और भी चकित कर देता है। परंतु हम यह न भूलना चाहिये कि सूफ़ी काव्य उन हिंदुओं द्वारा रचा गया है जो मुसलमान धर्म में अभी ही आये थे। दूसरे, सूफ़ी धर्म अन्य धर्मों के प्रति अत्यंत सहिष्णु है। तीसरे, जिन कथाओं में आध्यात्मिक अर्थ सिद्ध किये गये, वे जिस रूप में जनता में प्रचलित थीं, उसे तोड़ना-मरोड़ना अनुपादय होता। (वास्तव में सूफ़ी काव्य के पीछे न धर्म-प्रचार की भावना है, न काव्य-प्रतिभा-प्रदर्शन की। कविया ने प्रचलित मसनवी शैली पर आत्मानुभूति व्यक्त करने की चेष्टा की है। कथा के विस्तार और उसके स्वतः-सौन्दर्य ने उनकी अनुभूति को ढाँप दिया है परंतु प्रेम-विरह के अवसरों पर वह अनावृत भी हो गई है।)

सूफ़ी ग्रंथों की शैली मसनवी ग्रंथों पर निर्धारित है, महाकाव्य शैली पर नहीं। सारी कथा इसी रूप में कही गयी है। वह अखंडित रूप में चलती रहती है। परंतु इस मसनवी-काव्य का वाह्य रूप विदेशी होते हुए भी अनेक बातों में प्राचीन काव्य-परंपरा से मेल खाता है। प्रकृति-वर्णन हिंदू शैली पर ही है। परिगणन-शैली उस समय के काव्य में प्रचलित थी—इसी तरह ऋतु-वर्णन और वारहमासा जिन्हें प्रकृति के उद्दीपन के रूप में स्वीकार किया गया है। परंतु स्वयं सूफ़ियों की भावना में भी अनेक स्थानों पर प्रकृति को रंग दिया है। सूफ़ियों के अनुसार प्रकृति सत्य है, अव्यक्त सत्ता का व्यक्त रूप है इसी कारण सूफ़ी उसके रूप पर भी मुग्ध है। उसके प्रति प्रेम को वह उसके पार की परमसत्ता तक पहुँचने का साधन समझता है।

इस प्रकार हम हम देखते हैं कि सूफी काव्य का प्रकृत रूप भारतीय है। उसकी प्रेम पद्धति हमारे काव्य-शास्त्रों में कुछ हटकर अवश्य चली है परंतु उसका कारण केवल यह है कि उस पर आध्यात्मिक अर्थ का आरोप है। प्रेमों की कठिनाइयों के जैसे अनिरजित चित्र वहाँ हैं, वे हमारी काव्य-परंपरा की संपत्ति नहीं। फारसी के सूफी काव्य में प्रेमोत्कर्ष और प्रेम पंथ की कठिनाइयाँ दिखाने के लिए इस प्रकार के चित्रों की योजना की जाती थी। वास्तव में सूफ़ी काव्य में भारतीय और विदेशी साधनाओं एवं काव्य-परंपरा का आश्चर्यजनक सम्मिश्रण है। हम उसे सधि-काव्य कह सकते हैं। परिवर्ती सूफी कवियों में महत्वपूर्ण है यारी साहब (१६६८-१७२३), केशवदास, बुल्ला साहब (१७३० ई० के लगभग), बुल्लेशाह (१८वीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में), गुलाल साहब और भीखा साहब (१८वीं शताब्दी के अंतिम चरण में), नूरमुहम्मद (इन्द्रवती, १७५३) और मोतीराम (ज० १६८३, ब्रजभाषा में 'माधवानल') ।

सूफी-मत

इस्लामी धर्म की भाँति सूफी धर्म किताबी धर्म नहीं है। इसमें अध्यात्म तत्त्व और साधना की प्रमुखता है। इन्हें जाने बिना सूफियों के आचार-विचार के संबन्ध में अनेक प्रकार की भ्रात धारणाएँ उठ खड़ी होती हैं। जैसा हमने ऊपर बताया है, सूफियों के अध्यात्मतत्त्व और उनकी साधना में अनेक स्रोतों से आई हुई धारणा मिल गई है। स्वयं सूफीमत का निश्चित रूप १२वीं शताब्दी के बाद ही मिलता है। तीन-चार शताब्दियों तक तो अनेक प्रभावों का आदान-प्रदान चलता रहा।

१—अध्यात्मतत्त्व

(क) अल्लाह

सूफी-साधना का आलबन उसी प्रकार अल्लाह है जिम प्रकार बौद्ध साधना का आलबन निर्वाण है, या हिन्दू साधना का ब्रह्म। परंतु सूफियों के अल्लाह की भावना और इस्लाम की अल्लाह की भावना में अंतर है। इस्लाम के अनुसार अल्लाह के अतिरिक्त कोई देवता नहीं। 'ला इलाही अल्लाह'। सूफियों के अध्यात्म में अल्लाह की सत्ता सर्वोपरि तो है, परंतु उसके 'जलाल' की अपेक्षा उसके 'रहीम' (करुणामय) रूप पर ही अधिक बल दिया गया है। इस्लाम में अल्लाह की जो भावना है, उससे सूफी-अल्लाह की भावना श्रेष्ठतर है। कुरान का अल्लाह वास्तव में परम देवता है।

इसराएल की संतानों में जो स्थान यहोवा का है वही इसमाईल के वंशजों में अल्लाह का। कुरान का अल्लाह साकार, सगुण और शाश्वत है। अल्लाह के हाथ-पैर की भी चर्चा की गई है और इसे 'तजसीम' कहा गया है। मीमासकों को अल्लाह के हाथ-पैर की बात खटकी और उन्होंने यह माना कि अल्लाह अपवाद है। इसे उन्होंने 'तजीह' कहा। इस्लामी विचारकों ने अल्लाह के रूप के संबंध में अनेक प्रवाद चलाये। इनसे लाभ उठाकर सूफियों ने कहा कि अल्लाह हृदय में है, वह अंतर्र्यामिन् है और हृदय को आइने की तरह स्वच्छ रखकर उसका प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। अतः इस प्रकार एव-देशीय अल्लाह सर्वान्तर्यामिन्, निर्गुण, निराकार ब्रह्म बन गया। कुरान में भी अल्लाह के इस सार्वत्रिक रूप के उल्लेख मिल जाते हैं (अर्ली डेवलेपमेंट आन्ड मोहम्मेटनीज्म, पृ० १६६, कुरान, २-१८२, ५०-१५, ५१-२०-२१, २-१०६) परन्तु व्यापक-रूप से यह भावना लागू नहीं होती।

अल्लाह के संबंध में जो अनेक उल्लेख कुरान में थे उनसे उसके अनेक विशेषणों का पता चलता था। जिली ने इन विशेषणों के आधार पर अल्लाह के चार गुण बताये

१—जात (एकता, नित्यता, सत्यता, सार्वभौमिकता इत्यादि)

२—जमाल (उदारता, माधुर्य, क्षमा इत्यादि)

३—जलाल (शक्ति, शासकत्व इत्यादि)

४—कमाल (विरोधी गुणों का समाहार इत्यादि अलौकिक शक्तियों का स्वामीत्व)।

इस प्रकार अल्लाह के समस्त गुण जात, जमाल, जलाल और कमाल के अंतर्गत आ जाते हैं। कुरान में जमाल और जलाल के तो अनेक प्रसंग थे, परन्तु जात और कमाल का कहीं-कहीं उल्लेख मात्र था। सूफियों ने इन्हीं ही विशेष महत्व

इस प्रकार जहाँ कुरान के अल्लाह के सामने हमारा माथा (मस्तिष्क) झुक जाता है, वहाँ सूफियों के अल्लाह के सामने हृदय भाव-विभोर हो जाता है। यह सूफियों की नई व्यवस्था थी।

परंतु सृष्टि और जीवन को लेकर भी अल्लाह के संबंध में विवेचना की गई है। 'इलाह' ही परमसत्ता है। 'अहद' 'वाहिद' 'रहमान' और 'रब्ब' इसी के क्रमिक विकास है। अहद से पहले की अवस्था में अल्लाह जात के रूप में रहता है अहद अर्थात् केवल जात से वाहिद। कहने का तात्पर्य यह है कि वस्तुतः परमसत्ता अहद है, केवल है, अद्वैत है। इसे ठीक ठीक जाना भी नहीं जा सकता। इसे 'अमा' की अवस्था कह सकते हैं। व्यक्त होने के लिये जब अल्लाह इच्छा करता है तब हम उसे अहद के रूप में भी पाते हैं। 'अहद में तद्भाव और अहंभाव का समावेश रहता है। सूफी इन्दी के 'हाबिय्या' और 'अनिय्या' का भाव कहते हैं। प्रथम बातिन है तो द्वितीय जाहिर। पहली अव्यक्त है दूसरी व्यक्त। अहंभाव ने जो रूप धारण किया वही एक अथवा वाहिद बना। फिर अभिमान से अनेक का तौता बँधा। इलाह और मलहूम का व्यापार चल पड़ा।" (तसव्वुफ अथवा सूफीमत, पृ० १३६)

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूफियों को अल्लाह की भावना उतनी सामी नहीं है। वह वेदांतियों के ब्रह्मवाद से मिलती-जुलती है। इसी से उसमें 'रहस्यवाद' और इश्क (मादनभाव) की प्रतिष्ठा हो सकी।

२—जीव

कुरान में ब्रह्म-जीव के संबंध की कोई बात ही नहीं उठी है। उसमें अल्लाह और मुहम्मद का संबंध तो स्पष्ट है। अल्लाह

‘एक’ है, सर्वोपरि है। उसकी सत्ता सब से ऊपर है। मुहम्मद उसके दूत (रसूल) हैं। रसूल और भी आते रहे हैं। परन्तु मुहम्मद अंतिम रसूल है। अधिक से अधिक अल्लाह और इस्लाम के अनुयायियों का संबंध सेव्य-सेवक जैसा है। परन्तु जब दर्शन चल पडा, तर्क ने जोर पकड़ा, तो लोग अल्लाह और इंसान का संबंध भी खोजने लगे। अल्लाह, फरिश्तो, मुहम्मद और इंसान (जाव) एष सृष्टि मे परस्पर क्या संबंध है, ये जिज्ञासा के विषय हुए। सूफियो ने सोचा, आखिर जीव की क्या स्थिति है? क्या वह अल्लाह से भिन्न है? क्या वह अल्लाह की तरह ही एक, नित्य और सत्य है? इस्लाम ने इन विषयों पर कुछ नहीं कहा था। सूफियो ने वेदांतियों की तरह कहा—‘अन-अल-हक्क’। ‘मैं हक हूँ’ जीव ही ब्रह्म है। इस तरह जीव हक हो गया। वह सत्य, नित्य, एक मान लिया गया। मूलतः अल्लाह और बन्दे मे कोई अंतर नहीं है। आदमी अल्लाह का ही प्रतिरूप है। कहा है—जब सृष्टि बन चुकी तो अल्लाह ने अपने नूर से अपने अनुरूप ही आदम (प्रथम मनुष्य) की रचना की। वस्तुतः इंसान वह आईना है जिसमे अल्लाह अपना स्वरूप देखता है।

“सूफी साहित्य मे जीव का शास्त्रीय विवेचन अधूरा है। वहाँ काव्य के आवरण मे प्रतिपादित किया गया है कि जीव अल्लाह से भिन्न नहीं है। वस्तुतः दोनो एक ही हैं। इसमे तो संदेह नहीं कि सर्वत्र सूफियो ने अद्वैत का पक्ष लिया है। उसके अद्वैत के भी उसी प्रकार कई प्रकार पक्ष है जिस प्रकार भारतीय अद्वैत के। हल्लाज की दृष्टि मे जीव सर्वथा ब्रह्म नहीं बन सकता, वह पानी की भाँति शराब मे मिल सकता है। पर बिल्कुल ब्रह्म नहीं हो सकता। उसकी सत्ता बनी अवश्य रहती है। परन्तु उसका पूर्णतः लोप नहीं होता, अतएव

अके यहाँ देवत्व और मनुष्यत्व 'लाहूत' और 'नासूत' का विचार है। उसका कथन है कि वह जिससे प्रेम करता है वह स्वतः वही है। वास्तव में एक ही शरीर में दो प्राण हैं, जो परस्पर प्रणयवद्ध हैं। अंतर केवल यह है कि प्रेमी के स्वरूप-बोध से प्रियतम का दर्शन मिल जाता है, पर प्रियतम के साक्षात्कार से दोनों की सत्ता स्पष्ट हो जाती है। रूमी (मृ० १८७३) का मत हल्ताज से कुछ भिन्न है। उसका मत यह है कि प्रेमी और प्रिय देखने में भिन्न हैं, पर तथ्यतः उसके युगल शरीर में, मिथुन रूप में, एक ही आत्मा निवास करती है। जिली का कहना है कि प्रेमी और प्रिय एक ही की आत्मा हैं जो क्रम से दो शरीर में रहते हैं। फारिज (मृ० १८६१) आग्रह करता है कि प्रेमी सदैव प्रिय है और प्रिय सदैव प्रेमी है, उनमें कुछ भी अंतर नहीं। सचमुच सत्ता ही सत्ता से प्रेम करती है।" (वही, पृ० १४६)। ऊपर के उद्धरण से यह स्पष्ट है कि सूफी अद्वैतवादी है, परंतु यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि उनका अद्वैतवाद किस श्रेणी का है। केवल, विशिष्ट, शुद्ध अथवा द्वैताद्वैत में वह कौन-सा अद्वैतवाद है, यह कहना कठिन है। परंतु साधनापक्ष में वह वेदांत के केवलाद्वैत में बहुत निकट है, यद्यपि वह ज्ञानाश्रित नहीं, भावाश्रित है।

३—सृष्टि

सफियों की दृष्टि में सृष्टि का उपादान कारण 'रूह' है। 'रूह' का अर्थ है वह अलौकिक शक्ति जो हमें बराबर अल्लाह की झलक दिखताती है। यही रूह इमान (मनुष्य) में भा है। जिस प्रकार इंसान की रूह समा में अल्लाह के लिए तड़पती है, उसी तरह यह सृष्टि भी अल्लाह के लिए तड़पती है। इंसान

की रूह का शरीर से जो संबंध है वह रूह का सृष्टि से है। जिली कहता है कि अल्लाह न अपनी अल्लाह की सत्ता का प्रथमतः रूह का रूप दिया उनसे सृष्टि फरिश्तो और कल्ब की उत्पत्ति हुई। सूफियो के विचार में सृष्टि के सारे उपकरण अल्लाह के अंग प्रत्यंग की मलक है। जो कुछ गो-गोचर है, वह सब उमी का नखशिख है। वही एक अल्लाह सत्य है। शेष सब उसको छाया या प्रतिबिंब है। इम प्रतिबिंब में हम अल्लाह की झॉकी देख सकते हैं। यही उमकी उपादेयता है। सूफी सृष्टि में प्रतिबिंबित अल्लाह के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसमें तन्मय हो जाता है और इस प्रकार 'हक' तक पहुँचना चाहता है। जीव स्वयं अल्लाह का प्रतिबिंब है। अतः प्रकृति से उसका गहरा संबंध है। सन्नेप में, सूफियो के मतानुसार सृष्टि (प्रकृति) वह दर्पण है जिसमें अल्लाह के आत्मदर्शन की कामना पूरी होती है। इस दर्पण में अल्लाह का जो प्रतिबिंब पड़ता है, वही इन्सान है। परन्तु यह इन्सान सृष्टि में अपना स्वरूप देखना चाहता है। अतः वह भ्रम से अहम् में ग्रस्त हो जाता है। जब वह सृष्टि (प्रकृति) के सौन्दर्य को अल्लाह के सौन्दर्य का दर्पण समझने लगता, तब अपने स्वरूप से उसका मोह टूट जाता है और वह अल्लाह में मिल जाता है। इस प्रकार प्रकृति सूफियो के लिए एक महान् साधन है। प्रकृति के सौन्दर्य से एकात्म स्थापित करके ही साधक ईश्वरानुभूति (अन-अल-हक्क) को प्राप्त होता है।

४—शैतान

भारतीय वेदांत में ब्रह्म और जीव की अभिन्नता के बीच परदा डालने वाली शक्ति को 'माया' कहा गया है। ब्रह्म की यवनिका, ब्रह्म की शक्ति आदि कहकर इसकी व्याख्या की गई

है। सूफियों में शैतान अल्लाह और इन्सान के बीच में सब से बड़ी बाधा है।

परन्तु सूफियों को शैतान की कल्पना कुरान की मूल शैतान की कल्पना से भिन्न है। कुरान के अनुसार शैतान (इबलीस) ने खुदा की आज्ञा टाली। जब अल्लाह ने अपने नूर से आदम का निर्माण कर लिया, तो उसने इबलीस (शैतान) को आज्ञा को कि वह आदम का अभिवादन करे। इबलीस ने यह स्वीकार नहीं किया। फलतः उसे अल्लाह का दंड भोगना पड़ा। उसका काम यही रखा गया कि वह अल्लाह के बंदों को गुमराह करे और उन्हें अल्लाह से हटा कर कुमार्ग पर लगाये। सूफियो ने शैतान की कल्पना दूसरी तरह से की। जब अल्लाह सर्वोपरि है तो शैतान उससे विद्रोह किस तरह कर सकता है ? सूफियो ने यह कल्पना की, वास्तव में आदम का अभिवादन न करके एक तरह से शैतान ने अल्लाह की मन-चाही की। अल्लाह चाहता था कि कोई शक्ति ऐसी भी रहे जो उससे बंदों को कड़ी आग में तपा सके। अतः अल्लाह की इच्छा से ही इबलीस ने उसकी आज्ञा का पालन नहीं किया। इससे स्पष्ट है की सूफियों का शैतान कुरान का शैतान नहीं है। वह अल्लाह का अनन्य भक्त और उपासक है और इस भक्ति के कारण ही इतनी बड़ी लांछा का काम स्वीकार करता है। वास्तव में पौराणिकों में जो काम नारद करते हैं, वही सूफियो में शैतान। इसी से जायसी ने शैतान के स्थान पर नारद को रखा।

तब प्रश्न यह है कि इन्सान को पथभ्रष्ट कौन करता है ? इबलीस को तो इसके लिए दोषी ठहराया नहीं जा सकता। इसका कारण है नियति। कर्म ही मनुष्य को पथभ्रष्ट करने हैं। इन कर्मों का फल अनिवार्य है। अल्लाह कर्मों का फल देता है। इस तरह यहाँ का कर्मवाद आ जाता है। कर्मों के फल के

संबंध में अल्लाह भी स्वतंत्र नहीं है। परन्तु अल्लाह इतना अवश्य करता है कि वह हमें बराबर सावधान करता रहता है। कर्मों के फल के अनुसार नरक भी मिल सकता है, परन्तु नरक अल्लाह के जलाल का एक रूप है। अल्लाह रहमान भी है। रहम के कारण ही उसने नरक की रचना की है जिसमें प्राणी उसके पास तक अंत में पहुँच सके।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस्लाम में पाप की समस्या को एक तरह से उड़ा ही दिया गया है। पाप पुण्य का बांध मात्र है। अल्लाह में कोई पाप नहीं। प्रकृति के दोषों के कारण अल्लाह दोषी नहीं ठहरता। वास्तव में पाप है ही नहीं। वह तो पुण्य का अभाव मात्र है। इस कल्पना से पाप की समस्या में सद्गति ही छुट्टी मिल जाती है। वास्तव में पाप के कारण पुण्य चमक उठता है। पापी से ही जलाल की प्रतिष्ठा है। सूफियों के मत में इबलीस दर्पण का वह पृष्ठ है जिसके कारण अल्लाह का प्रतिबिम्ब होना संभव है। इस तरह वह घृणा की चीज नहीं रह जाता।

५—अन-अल-हक़

परमार्थतः अल्लाह और इंसान एक ही तत्त्व के बने हैं। जिस प्रकार अल्लाह में जमाल और जलाल के दो तत्त्व हैं उसी प्रकार इंसान में भी यही दो तत्त्व हैं। यः पिडे सा ब्रह्माडे। पिड मे जो है, वही ब्रह्माड मे है। फिर इंसान में 'रूह' है। वह अल्लाह का प्रतिबिम्ब है। इंसान तत्त्वतः हक़ है। उसकी रचना इसलिए ही हुई है कि उसके द्वारा अल्लाह आत्मदर्शन चाहता है। परमार्थ-दर्शन के बाद अल्लाह और इंसान की भिन्नता नहीं रहती। कुछ सूफी कहते हैं कि परमसत्ता में जीव में सर्वथा लोप हो जाता है, कुछ अंशतः मानते हैं अनेक

प्रकार की उपमाओं का प्रयोग हुआ है। बरफ, पानी, नदी, समुद्र और आग-जोहा जैसे कई प्रतीक आये हैं, परंतु इनसे किसी निश्चित सिद्धांत की सिद्धि नहीं होती।

सूफियों की साधना यही है कि वह 'अन-अल-हक्' 'मै ब्रह्म हूँ,' इस बात को स्वयं अनुभव कर सके। इस प्रकार का अनुभव सहज ही प्राप्त नहीं होता। अतः साधना की आवश्यकता पड़ती है। एक शब्द में इस साधना को 'विरह की साधना' कह सकते हैं। सूफ़ी दिन-रात उस महामिलन की आकुलता का अनुभव करना चाहते हैं जो अन्ततः जीव-ब्रह्म को एक कर देगी।

'अन-अल-हक्' की साधना पर विचार करने से पहले हमें दो तीन सूफ़ी पारिभाषिक शब्दों को जान लेना होगा। क़ल्ब, सिर्र, नफ़स। ये तीन महत्वपूर्ण शब्द हैं। क़ल्ब मनुष्य की वह अत्यंत सूक्ष्म वृत्ति है जो सत्य का मंदिर है। यही परमात्मा (अल्लाह) निवास करता है। यह मांसपिंड (हृदय) नहीं है। उपनिषदों में भी 'हृदय'-तत्त्व को ही परमात्मा का अधिष्ठान बताया गया है परंतु वहाँ भी 'हृदय' से भौतिक हृदय का अर्थ नहीं होता है। सूफ़ियों के क़ल्ब की तरह वह भी मूल अंतर्वृत्ति है जिसका परिमार्जन आवश्यक है। जप, तप, नाम-साधन इत्यादि साधनाओं द्वारा 'क़ल्ब' का परिमार्जन संभव है। यही क़ल्ब मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार का निवासस्थल है। अंततः यह वही है जिसे वेदांती अतःकरण कहते हैं। जब ब्रह्ममिलन की आकुलता अत्यंत बढ़ जाती है तो इसी क़ल्ब (हृदय) में अत्यंत अभाव, अत्यधिक उत्कंठा और व्याकुलता का जन्म होता है। यह जीव की अंतिम परिणति है। इसे सात्विक भाव भी कह सकते हैं। यह 'सिर्र' की मनोस्थिति बहुत कम साधकों को प्राप्त होती है।

परंतु 'सिर' तो दूर, नफस की स्वच्छता भी सहज साध्य नहीं है। नफस इमका कारण है। नफस का अर्थ है ऐन्द्रियता, चित्तवृत्ति या वासना। पाँच इन्द्रियाँ इसकी प्रतीक हैं। विषय-वासना, भोगविलास और आत्मवंचना इसके रूप हैं। इससे छुटकारा मिले तब आत्म-वृद्धि हो, परंतु इससे छुटकारा पाना कठिन है। इसी से इसे लोमड़ी, श्वान, चूहा अथवा सर्प कहा गया है। कुछ सूफी, इसे इबलीस (शैतान) कहते हैं। इंसान का सब से भयंकर शत्रु यही है। साधारणतः इस पर विजय पाना असंभव है, परंतु इंसान में अल्लाह की रूह है। इस कारण सफलता संभव है। रूह अल्लाह के लिए तड़पती है। यदि यह तड़पन सच है तो नफस की हार होगी। इस नफस के कारण ही जीव अध्यात्म मार्ग को त्याग कर संसार-साधन में लगता है। इसी से सूफा-साहित्य में नफस को वश में करने या मार डालने की बात बार-बार आती है।

इंसान में 'नफस', 'रूह' और 'अकल' ये तीन चीजें होती हैं। 'अकल' का अर्थ है इल्म या बुद्धि-विलास। सूफियों की दृष्टि में यह भी साधक के मार्ग में इतनी ही बाधक है जितनी 'नफस' (चित्तवृत्ति)। सूफी बुद्धि-विलास को बेकार समझते हैं, परंतु प्रज्ञा (मुआरिफ) को सहायक मानते हैं। वास्तव में जीव की सात्विक मूल स्थिति 'रूह' है। नफस और अकल इस सात्विक स्थिति को नष्ट कर देते हैं। इनका साधन है 'खुदी' (अहम्)। 'अहंकर' से बड़ा शत्रु इंसान का कोई नहीं। इसी से सूफी अहंकार (खुदी) से लड़ता है। खुदी को मार कर वह खुदा बन जाना चाहता है। इल्म, नफस और खुदी से ऊपर उठकर कल्ब (प्रज्ञा या सहज ज्ञान) की बात सुनना ही साधक का ध्येय है।

(६) सूफी साधना

सूफी इस्लाम के अन्दर आते हैं। इस्लाम से बाहर उनको स्थान मिलना असंभव था, अतः उन्हें मुसलिम संस्कारों को अपनाना पड़ा। इस्लाम की अनेक मान्यताओं को साथ लिये बिना उसका चलना ही असंभव हो जाता और वह काफिर कह कर मार डाले जाते। इसी से हमें अनेक प्रकार के गुह्य की प्रवृत्ति सूफी मत में मिलती है और उसमें व्यक्तिवाद और संघवाद का द्वंद भी दिखलाई पड़ता है।

इस्लाम धार्मिक सघ है। यह कोई व्यक्तिगत साधना का नाम नहीं है। मुहम्मद साहब में इसमार्गल की सतानों को एक भंडे के नीचे संघटित किया और एक आक्रमणकारी कट्टर सघ के रूप में दुनिया के सामने उपस्थित किया। इसी से इस्लाम की धार्मिक व्यवस्था में संघ का रूप ही अधिक व्यक्त हुआ है। “अल्लाह एक है”—इसे तौहीद कहते हैं। यही इस्लाम का मौन-मंत्र है। यही तौहीद साध्य है। इसके साधन हैं सलात, जकात, सौम और हज्ज। सलात का अर्थ है पच-वक्तः नमाज। विशेष अवसरों पर जकात (दानादि)। वर्ष में एक बार एक मास की साधना रमजान, सौम या रोजा और जीवन में एक बार हज्ज। यही इस्लाम की संघ-साधना है। इससे इस्लाम का मूल रूप सामाजिक ही प्रतिष्ठित होता है, धार्मिक नहीं। सूफियों की साधना सामाजिक नहीं है, वैयक्तिक है। यह संघ की साधना नहीं, हृदय की साधना है। अतः सघ या समुदाय के नियमों से उसका पालन नहीं हो सकता। किसी भी साधना में हृदय (भावनाओं) का प्रसार वांछनीय है। इस्लाम जैसा परिपाटीबद्ध सामाजिक धर्म कोमल भावनाओं का आश्रय नहीं बन सकता था। इससे सूफियों को

इस्लाम के अंदर रहते हुए भी इस्लाम की नई परिभाषा गढ़नी पड़ी। बाहर तो इस्लाम को ध्वजा स्थापित करके ही छुटकारा था, हाँ, अतःपुर एकदम बदल गया। बाहर इस्लाम के सारे उपकरण ग्रहण कर लिये गये परंतु उनकी व्याख्या बहुत कुछ इस तरह की गई कि शीघ्र ही उनसे छुटकारा हो गया। उपर्युक्त तौहीद के साधनों (सलात, जकात, सौम और हज्ज) को ही लीजिये। सलात का अर्थ है अल्लाह की प्रशंसा, मुहम्मद का गुण-गान, सदाचार की साधना। जुमे का समारोह भी सलात का ही एक अंग है वैसे सलात एकात में भी हो सकती, परंतु जब वह समारोह में होगी तो उसका नायक इमाम होगा। सलात के अनेक भेद हैं और भिन्न-भिन्न प्रकारों की सलातों के भिन्न-भिन्न समय हैं। नियमित या नित्य उपासना को सलात के नियमों में बांध कर पचवक्तः नमाज का रूप दे दिया गया है। इस प्रकार इस्लाम मतावलंबियों को सूत्रबद्ध करने में सलात सब से अधिक सहायक है। अल्लाह शासक है। अत्यंत विनम्रता से उसके प्रति दास्य भावना का स्वीकारोक्ति सलात का प्रधान अंग है। सूफियों में सलात को नया रूप दिया। इमाम की जगह गुरु ने ली। वही अगुआ रहा। सलात में नामस्मरण है, सूफी-मत में भी है, परंतु सूफियों में नाम-स्मरण नामस्मरण-मात्र नहीं। वह विह्वल आत्मा की तड़पन है। सलात के अनेक आसनो का स्थान 'जिक्र' को मुद्राओं ने ले लिया। इस प्रकार इस्लाम में प्रकारान्तर से योग की मुद्राओं का समावेश हो गया। जकात का अर्थ है दान। प्रत्येक मुसलिम दान के रूप में उसे कर समझ कर कुछ दे, मुहम्मद साहब ने कुछ ऐसी व्यवस्था की। इससे अंततः संघभाव को ही बल मिलता, धनी निर्धन एक हो जाते। सूफियों ने दया, दाक्षिण्य या उपकार के रूप में

इस भावना को व्यापकता दे दी। 'सर्व-त्याग' या 'संन्यास' के रूप में इस भावना का प्रचार होने लगा। दीनता के गीत गाये जाने लगे। फलस्वरूप सूफो काम-धाम छोड़ बैठे और राम-आसरे रहने लगे। एक पक्ष के लोग कहते कि खुदा के बंदो को भी कर्म करना चाहिये (कस्ब)। और लोग कहते कि भक्तों को 'तवक्कुल' (संतोष) के काम लेना चाहिये। अतः जकात का अर्थ यह हो गया कि सूफो सब कुछ त्याग दे और स्वयं भी परमात्मा के अर्पण हो जाये। इस प्रकार कर्म-प्रधान इस्लाम को सूफियो ने निवृत्ति-प्रधान संन्यास मार्ग बना दिया।

सौम का तात्पर्य केवल संयम मात्र है। वर्ष में एक महीने के लिए खान-पान, निद्रा और भोग का नियमन संघशक्ति बढ़ाने के लिए ही है। उपवास इसका प्रधान अंग है। रमजान के महीने को सौम (तप) के लिए चुना गया। इसी महीने कुरान का अवतरण हुआ था। मुहम्मद साहब का उत्कर्ष और उनके विरोधियों का पतन भी इसी महीने हुआ। सौम (फारसी में 'रोजा' का नाम) इस महीने की विशेषता बना। सूफो तो 'तप' में विश्वास ही करते थे। उन्होंने आहार-शुद्धि, उपवास और कृच्छ्र साधनाओं का अत्यंत विस्तार कर दिया। कुछ सूफो तो वर्ष भर इन तप-साधनाओं में लगे रहते और इसलिए केवल महीने भर की साधना को ढोंग कहते। वे 'जिन्द' या 'आजाद' कहलाये। रही हज्ज। जीवन में एक बार काबा पहुँच कर 'संग असवद' (काले पत्थर) को चुंबन देना सूफियो को कहाँ तक पसंद आ सकता है। सलात (नमाज़) में भी उपासक का मुँह काबा की तरफ होना चाहिये। सूफो स्वतंत्र-चेता थे। केवल रस्म के लिए हज्ज की बात को मानना उनके लिये कठिन था। उन्होंने कल्व में ही

‘किबला’ (संग असवद) की उपस्थिति मानी । अल्लाह तो सब के हृदय के भीतर ही निवास करता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तौदीद (वहदत = जीव-ब्रह्मैक्य) की अवस्था को प्राप्त करने के लिए कुरान में जो साधन दिये थे, उन्हें सूफियों ने नये अर्थ देकर स्वीकार कर लिया । सलात और हज्ज की उन्होंने विशेष चिन्ता नहीं की । ये तो रस्म-मात्र थीं । ये व्यक्ति की साधना नहीं, समाज-गत साधनाएँ थीं । परंतु ज़क़ान (दान, सर्वव्याग या आ-मसमर्पण) और सौम (उपवास, व्रतादि) को उन्होंने नये रंग से अपना लिया ।

सूफी साधना की सबसे पहली सीढ़ी ‘शरीअत’ है । वास्तव में यह साधारण इस्लामी कर्मकांड है । सूफियों ने इसे पहली मंजिल के रूप में इसलिये स्वीकार कर लिया है कि उनकी साधना इस्लाम की साधना से भिन्न नहीं लगे । शरीअत के ‘मुकामात’ हैं तोबा, जहद, सत्र, शुक्र, रिजाअ, खौफ, तवक्कुल, रजा, फिक्र और मोहब्बत । वास्तव में सूफी साधना का आरंभ ‘मोहब्बत’ से होता है । सब के पहले तो मोमिन (अल्लाह के प्यारे) को उन बातों का त्याग तथा पश्चात्ताप करना पड़ता है जो अल्लाह के रास्ते में बाधक है (तोबा) । फिर उन्हें इन बाधाओं से लड़ना पड़ता है (जहद) । प्रयत्न में सफल होने पर उसे सत्र (संतोष) का सहारा लेना पड़ता है, नहीं तो उसमें अहम् (गर्व) का उदय होगा और उसकी साधना नष्ट हो जायगी । शैतान भुलावा देने के लिए बराबर तैयार है । इसलिए उसे अल्लाह का ‘शुक्र’ मानना पड़ेगा । ईश्वर के आदेश पर चलना (रजाअ), उससे भयभीत रहना (खौफ), जीविका के लिए इधर-उधर न भटकना (तवक्कुल) तटस्थ हो ईश्वर का ध्यान करना (रजा) अन्य मंजिलें हैं ।

अत मे अल्लाह की प्रीति (मोहब्बत) का जन्म होता है । अंतिम मंजिल (मोहब्बत) तक पहुँच कर मोमिन सूफी बन जाता है और वह शरीअत से आगे बढ़ कर तरीकत मे प्रवेश करता है ।

इसके बाद मोमिन साधक (सालिक) बन जाता है और उसे किसी भेदिये (मुरशिद) की आवश्यकता पड़ती है । मुरशिद ही उसे तरीकत के रहस्यों का परिचय कराता है । साधक (सालिक, आबिद) मे जिस बात का होना आवश्यक है वह है तीव्र लगन । जब मुरशिद जान जाता है कि मुरीद (शिष्य) मे लगन पैदा हो गई, तो वह उसे चित्तवृत्तियों के निरोध (जेहाद) की शिक्षा देता है । इस क्षेत्र मे सफलता पाने पर सालिक मे म्वारिफ (प्रज्ञा) का जन्म होता है और वह 'आरिफ' बन जाता है । म्वारिफ के उदय होने से परमात्मा (अल्लाह) के स्वरूप की चिन्ता करने लगता है । विरह उसकी साधना बन जाता है । धीरे-धीरे वह तरीकत को पार करके हकीकत के क्षेत्र मे पहुँच जाता है । 'हकीकत' की साधना का अत वस्ल (महामिलन) मे होता है । धीरे धीरे साधक फना की दशा तक पहुँच जाता है । उसे स्मरण भी नहीं रहता कि वह 'ग्यारे से भिन्न है और अत मे द्वन्दो से ऊपर उठकर वह 'अन-अल-हक' (मैं हक हूँ) चिह्नाने लगता है ।

इस प्रकार हमे पता चलता है कि सूफी साधना की चार मंजिलें मानते है (१) शरीअत, (२) तरीकत, (३) मारिफत और (४) हकीकत । शरीअत इस्लामी कर्मकांड से भिन्न नहीं है । वास्तव मे सूफी साधना तरीकत से आरंभ होती है । जब तक मुआरिफ (प्रज्ञा) का उदय नहीं होता है, तब तक

‘तरीकत’ है। इसमें भी कर्मकांड ही अधिक है। वस्तुतः प्रज्ञा के उदय के बाद जब साधक मारिफत में प्रवेश करता है, तभी सच्ची सूफी साधना का आरंभ होता है। प्रज्ञा (मुआरिफ) द्वारा ही साधक ‘हकीकत’ की दशा को प्राप्त होता है। हकीकत साधक की साधनावस्था नहीं, अनुभूति की अवस्था है। वास्तव में हकीकत ही सूफी-साधना का अंतिम ध्येय है। सालिक की सारी साधना इसी तुरीयावस्था की प्राप्ति के निमित्त होती है। इस साधना में सबसे बड़ी सहायता ‘मुआरिफ’ (प्रज्ञा) से मिलती है। इल्म बंदे को खुदा से अलग करता है, मुआरिफ (प्रज्ञा) मिलाती है। संतो ने भी इसी प्रज्ञा या सहजानुभूति (Intuition) को प्रधानता दी है। इल्म का संबंध हदीस, सुन्ना, इज्मा, कयास आदि से संबंध है। मुआरिफ में इनका कोई महत्व नहीं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि धीरे-धीरे सालिक मूल इस्लामी भावना से हटा जाता है। अष्टछाप के कवियों और पुष्टिमार्ग ने जिसे ‘पुष्टि’ या ‘अनुकंपा’ कहा है, वही मुआरिफ है। अल्लाह को अनुकंपा के द्वारा ही प्रज्ञा (मुआरिफ) जाग्रत हो सकती है। प्रज्ञा के जाग्रत होने से अल्लाह के जमाल के दर्शन होते हैं। कुरान में अल्लाह का जलाल ही साधना का लक्ष्य है। सूफी जलाल को महत्व नहीं देते। वह तो बड़े और खुदा में भेद उपन्यस्त करता है। वह जमाल (प्रेममय रूप) के ही उपासक है। कभी-कभी सूफी शरीअत और तरीकत के बिना भी सीधे हकीकत की अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं। अनायास ही प्रियतम का साक्षात्कार उन्हें हो जाता है। ऐसे सूफी सबबद्ध साधना को स्वीकार नहीं करते। उनकी साधना पूर्णरूप से वैयक्तिक है। इन्हें ‘आजाद’, ‘बेशरा’, ‘जिदीक’, ‘जिन्द’ आदि कहा जाता है।

एक तरह से सूफी साधना की ये चारों सीढ़ियाँ (शरीअत,

तरीकत, मारफत और हकीकत) भारतीय उपासना-विधियों से मिलती-जुलती हैं। इन्हें भारतीय दार्शनिक परंपरा में क्रमशः कर्मकांड, उपासनाकांड, ज्ञानकांड, भक्तिकांड कहा जा सकता है। भारतीय दार्शनिक परंपरा में ये अलग-अलग मार्ग हैं, परंतु सूफी साधना में साधक (सालिक) कर्म, उपासना और ज्ञान के क्षेत्रों को पार करके क्रमशः भक्ति को प्राप्त होता है। वास्तव में हकीकत (भक्ति) ही सर्वोपरिकांड है, अतः एक तरह से सूफी भक्त ही कहे जायेंगे। सिर की अवस्था को प्राप्त सूफी सालिक भारत का 'परमहंस' ही है। यहाँ बाशरा और बेशरा सूफियों में भी थोड़ा भेद कर देना होगा। बाशरा सूफी लोक-रंजन के लिये शरीअत का पालन करते हैं, परंतु बेशरा शरीअत और तरीकत के कायल नहीं।

(७) साधना के सहायक अंग : जिक्र, मराकबा, समाअ

सूफी साधना के प्रधान अंग जिक्र मराकबा और समाअ हैं। जिक्र को योगासन और जप कहा जा सकता है। जिक्र में सूफी भिन्न-भिन्न आसनो से बैठते हैं और तसबीह (माला) हाथ में लेकर जप (नाम-जप) की साधना करते हैं। जिक्र जली में नाम-जप वाणी द्वारा होता है। जिक्र खफी में केवल मन नाम-जप में भाग लेता है। यह पहले से अधिक उच्च अवस्था है। दोनों जापो का मंत्र एक ही है। 'ला इलाह इल्लिललाह'। जली में साधक इसी मंत्र का उच्चारण जोर जोर से करता है, खफी में मौन मंत्र में इसका उच्चारण करता है। जला सव का साधना है। खफी हृदय की एकांत साधना। जिक्र (नामस्मरण) के बाद फिक्र (चितन या ध्यान) का उदय होता है जो धीरे-धीरे मुराकब. (समाधि) में परिवर्तित हो जाता है।

ज़िक्र का सबसे प्रधान अंग 'समाअ' (संगीत) है । इस्लाम के पीरो ने इसी 'समाअ' के कारण सूफियों का घोर विरोध किया है । तसव्वुक (सूफीमत) के कुछ संप्रदाय स्वयं समाअ को साधना रूप से स्वीकार नहीं करते । समा में नृत्य-संगीत का जो संग्रह था वह इस्लामी सामी-परपरा के एकदम विपरीत था । परंतु धार्मिक वातावरण के निर्माण में नृत्य और संगीत का प्रधान हाथ रहता है ।

“Dancing in order to arouse a divine furore is not of course confined to the religion of the Savages and of Mohammadans Civilised Europe has had its dancing sects and new ones continue to appear now and again ” (The Psychology of Religious Mysticism, P 715)

इसीसे सूफी नृत्य संगीत को अवहेलना नहीं कर सके । कदाचित् बौद्ध सिद्धों के रहस्यवादी साहित्य का प्रभाव भी सूफियों पर पड़ा हो जिसमें नृत्य-गान और मदपान की व्यवस्था थी । वैष्णव धर्म में संकीर्तन के रूप में इनकी योजना है ।

(८) साधक की रहस्यमयी यात्रा : 'मुकामात'

आत्मा और परमात्मा (अब्द और अल्लाह) की व्याख्या करते हुए प्रारंभिक सूफ़ी विचारकों ने नासूत, लाहूत, मलकूत और जबरूत हैं । नासूत नरलोक, मलकूत देवलोक, जबरूत ऐश्वर्य लोक और लाहूत माधुर्यलोक । वस्तुतः कुरान में इस तरह के लोकों की कोई कल्पना नहीं थी । यह सूफ़ियों की मौलिक ईजाद थी । उन्होंने अल्लाह को किसी सातवें आसमान के शासक के रूप में देखना नहीं चाहा, अतः ऐश्वर्य लोक (जबरूत) से बहुत ऊपर लाहूत (माधुर्य लोक) में उसकी प्रतिष्ठा की । परन्तु धीरे-धीरे यह ब्रह्मांड के बाहर के

लोको की कल्पना सूफी साधना का अग बत गई और साधक की भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ इन नामों से पुकारी जाने लगी। नासूत जाग्रतावस्था, मलकूत स्वप्नावस्था, जबरूत सुषुप्ति की अवस्था और लाहूत तुरीयावस्था। हाहूत को सबसे ऊपर सत्यलोक कहा गया। परन्तु अधिकांश सूफियों ने हाहूत को स्वीकार नहीं किया। साधना की अवस्था में सूफी क्रमशः जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति की अवस्थाओं में होता हुआ तुरीयावस्था को प्राप्त होता है।

इन चार लोको (अन्त. क्षेत्रों) के अनिरिक्त सूफी-साधना में सात मुकामातो (भूमियों) की भी कल्पना हुई है। ये सात मुकामात हैं अबूदिया, इश्क, ज़हद, मुवारिफ़, वज्द, हकोक और वस्ल। वस्ल-प्राप्ति के बाद अहंभाव का अंत हो जाता है और 'बका' का आनन्द प्राप्त होता है। जीव की दृष्टि से वह 'फना' में विहार करने लगता है। परमात्मा की दृष्टि से जो बका है, वही जीव की दृष्टि से फना है। यही तसव्वुफ़ के सात 'महल' हैं। इन सात साधना-भूमियों को साधारण परिभाषा के द्वारा समझाना असंभव है। मुराशिद (गुरु) द्वारा ही इनका रहस्य जाना जा सकता है।

(६) प्रतीक

सूफियों के वाद-विवादों और साहित्य में प्रतीकों (Symbols) का प्रयोग व्यापक रूप से हुआ है। कदाचित् संसार के किसी साहित्य में प्रतीकों का इतना अधिक, इतना व्यापक प्रयोग हुआ हो जितना सूफियों के साहित्य में। कहीं-कहीं प्रतीक इतने अधिक इकट्ठे हो जाते हैं कि उनके पीछे के मंतव्य को समझना कठिन हो जाता है। जिन-जिन धार्मिक संप्रदायों ने गुह्य को साधना का अग बनाया, उन-उन संप्रदायों

के साहित्य में प्रतीक बराबर मिलते हैं। भारतीय साहित्य में उपनिषद्, योग, सिद्ध और संत-साहित्य में प्रतीकों का प्रयोग व्यापक रूप से हुआ। इसीसे सूफी भावना को भली भाँति समझने के लिए प्रतीकों का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। आज युगांतर में चाहे प्रतीकों के पीछे के अर्थों की व्यंजना धुँधली हो जाती है, साधना के उस प्रारम्भिक काल में वह साधना में पूर्णरूपेण सहायक होंगे, इसमें सन्देह नहीं। किसी विशेष विचार या भावना के लिये किसी चिन्हविशेष का प्रयोग उस विचार या भावना के प्रचार एवं प्रसार में सहायक होता है। कालांतर में प्रयोग-बाहुल्य के कारण प्रतीक रूढ़िग्रस्त हो जाते हैं।*

(सूफी मत में 'रति' (प्रेम-भाव) की प्रधानता है। रति का मुख्य उद्दीपन या उसकी मादकता का सबसे सुंदर चिन्ह मदिरा (सुरा) होने के कारण सूफी साहित्य में सुरापान को लेकर एक व्यापक रूपक का निर्माण कर लिया। साकी माशूक है। वह अल्लाह का रूक है। इसी से अल्लाह के सौन्दर्य के नाते साकी के अलौकिक सौन्दर्य का वर्णन सूफी साहित्य का क, ख, ग बना। अल्लाह को पुरुष के रूप में स्वीकार करने के फल-स्वरूप साकी भी स्त्री नहीं, पुरुष हुआ। हव्वा (आद्या या आदि नारी) के कारण ही आदम अदन (स्वर्गीय नंदन) से निकाले गये थे। नारी केवल प्रलोभन मान कर उदेश और लाडला का वस्तु हो गई। इसी से सूफी साहित्य में 'किशोर' वय पुरुष

*In religion, symbolism is a help and a hinderance It provides a sign for an idea and is useful in recalling the idea. But, when, instead of recalling, it replaces the idea, it becomes a menance" (Origin and Evolution of Religion. Hopkins P 45)

के लिए आग्रह है। बाद को इसीने अमरद-परस्ती का रूप धारण किया। अधिकांश सूफ़ी कवि 'अमरद' (किशोर) को ही अपना प्रतीक बनाते हैं और उसी के प्रेम में पागल घूमते हैं। गुलामो के रूप में सुन्दर बच्चों को माशूक बनाया गया। तुर्क, मग और ईरानी और फिर हिन्दुस्तान में बिरहमन-जादा माशूक बने। जहाँ-जहाँ मुसलमान विजयी के रूप में गये, वहाँ-वहीं 'अमरद' के नये-नये रूप 'अल्लाह' के प्रतीक के रूप में ग्रहण हुए। सूफ़ियों के लिए जो अमरद प्रतीक मात्र था, वही साधारण जनो और धनी विलासियों के लिए मनोरंजन और आत्मवृत्ति (वासना) का विषय हो गया। परंतु यह नहीं समझना चाहिये कि नारी-सौन्दर्य को सूफ़ियों ने कभी प्रतीक नहीं बनाया। अरबी, रूमी और जामी के अनुसार अल्लाह कभी कभी स्त्री के रूप में भी दर्शन दे देता है। वास्तव में प्रतीक तो 'हुसन' (सौन्दर्य) है। फिर वह चाहे नारी सौन्दर्य हो, या पुरुष-सौन्दर्य। अल्लाह का जमाल ही तो हुसन (सौन्दर्य) के रूप में प्रकाशमान है। अतः नारी-पुरुष के यौन-संबंध के सारे कार्य-व्यापार आध्यात्मिक व्याख्या द्वारा पूत बना लिये गये।

सुरापान का अर्थ हो गया दैवी उल्लास। इसी उल्लास के कारण शराब को भी प्रतीक का स्थान मिला। हाँ, सूफ़ियों की शराब साधारण शराब नहीं है, वह शाश्वत आनंद प्रदान करने वाला अमृत है। इस रूपक के भीतर से सूफ़ियों ने अपने विरोधियों की भी पूरा खबर ली। इसी सूफ़ी साहित्य में शेख, जाहिद, काज़ी और मुल्ला आदि पर व्यंग्य की बौद्धि मिलती है। ये सब मूल इस्लामी धर्म (सामी मत) के अनुयायी हैं और सूफ़ियों का प्रेम मार्ग इनकी शासक-शास्ता

की भावना के विपरीत है। अतः इन्हे पाखंड का प्रतीक बनाया गया है और सूफी शायरी में इनकी बड़ी दुर्गति हुई है।

(सूफी-साहित्य में साकी के प्रतीक का व्यापक प्रयोग हुआ है। उनके अंग-प्रत्यंग को साधना का केन्द्र बनाया गया है। उसके “नवशिख में मुख की प्रधानता होती है। उसका वर्णन प्रायः सभी कवि खूब करते हैं। पर उसका प्रकट दर्शन कितनों को होता है ? परदे के भीतर का दीदार ही तो तसव्वुफ का सब कुञ्ज है। केश सूफियों का मुख्य प्रतीक है। उसकी कालिमा, उसकी कांति एवं उसका विस्तार प्रेमियों के लिए मनोरम और आकर्षक तो है ही सूफी उसको माया का रूप समझते हैं। प्रियतम अपने बालों के आवरण और विक्षेप से प्रेमियों को नचाता रहता है। उनका दिल इन्हीं में उलझ कर रह जाता है। कटाक्ष भी तो कुसुम-वाण हैं जो हृदय को बिद्ध कर प्रियतम के प्रेम में प्रेमी को अचेत कर देते हैं और फिर कभी उसको प्रेम से मुक्त नहीं होने देते। ऐसे ही प्रियतम के प्रत्येक अंग किसी भावना के द्योतक हो तसव्वुफ के प्रतीक बन जाते हैं और सूफी अपने काव्य में उनका प्रयोग कर प्रेम की व्यापकता को प्रशस्त करते हैं”)(तसव्वुफ अथवा सूफीमत, पृ० १०८)। कफस (पिजरे) और बुलबुल के प्रतीक से सूफी देहबद्ध आत्मा की अशांति को प्रकाशित करते हैं। बुल बुल चमन के लिये तड़पती है, सूफी तादात्म्य का अनुभव कर स्वतंत्र होने के लिये। सूफी काव्य में बुलबुल विरही आत्मा की अन्यतम पुकार है। आबो-माही (जल-मीन) और नरमए नै (बाँसुरी की दर्द भरी आवाज) भी इसी भावना को प्रकट करने के साधन हैं। विश्व के कण-कण में विरह-व्यथा भरी है। जो कुछ भी गो-गोचर है, वह सब प्रियतम

की खोज में आकुल हो रहा है। इस खोज का कहीं अंत नहीं है !

(सूफियों की साहित्य-चेष्टाओं में प्रतीकों का स्थान महत्वपूर्ण है। इन्हीं के आधार पर अन्योक्तियों का बड़ा सुन्दर समाधान सूफी-साहित्य में मिलता है। सामान्य उक्तियों की अपेक्षा अन्योक्तियों में विशेष चमत्कार रहता है।) हिंदी कविता में कबीर की अन्योक्तियाँ प्रसिद्ध हैं, जैसे

चलि चलि रे भँवरा कवल पास ।

भँवरी बौले अनि उदास ॥ टेक ॥

तैं अनेक पुहुप कौ लियौ भोग । सुख न भयौ तब बढ्यौ रोग ॥
हौ ज कहत तोसो वार-वार । मै सब बन सोध्यो डार डार ॥
दिना चारि के सुरग फूज । तिनहिं देखि कहा रह्यो है भूल ॥
या नवासपती में लागेगी आगि । तब तूँ जैहो कहों भागि ॥
पुहुप पुरान भये सूक । तब भँवरहि लागी अधिक भूख ॥
उठ्यौ न जाइ बल गयौ है छूटि । तब भँवरी रूनी सीम कूटि ॥
दस दिसि जोवै मधुप राह । तब भँवरी ले चली सिर चढा ॥
कहै कबीर मन को सुभाव । राम भगति बिन जन को डाव ॥

संसार के सारे रहस्यवादी काव्य में अन्योक्ति का विशद प्रयोग हुआ। अन्योक्ति के द्वारा अनेक ऐसे संस्कार जाग्रत किये जाते हैं जो हमारे अर्द्ध चेतन (Unconscious mind) में वासना के रूप में पड़े रहते हैं। ऊपर के उद्धरण में भँवरा आत्मा का प्रतीक है, कमल परमात्म-सत्ता का। हृदय स्वतः इस बात को समझ लेता है। उसे समझने की आवश्यकता नहीं पड़ती। (इस प्रकार का संकेतात्मक काव्य सूफी-साहित्य की विशिष्ट वस्तु है। समासोक्ति का भी प्रयोग विशद रूप से हुआ है। समासोक्ति में सारी कथा प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत को

साथ-साथ लेकर चलती है। कहानी की कहानी और रूपक का रूपक। उर्दू-फारसी को मसनवियाँ और हिन्दी के सूफी प्रेमात्मक काव्य वस्तुतः समासोक्ति ही हैं। इस दोहरी चेष्टा के कारण कहीं-कहीं पर मंतव्य अस्पष्ट हो गया है और कहीं-कहीं कहानी कला से दूर जा पड़ी है। प्रारंभिक सूफियों ने यूसुफ और जुलैखा, लैला और मजनून, और शीरी-फरहाद जैसी लोक-प्रचलित कथा अपनाया और प्रेम-भाव के प्रवाह में पड कर उन्हें लिखा। उन्होंने जीवन की व्याख्या नहीं की, अपने सिद्धांतों को लेकर कथा में जोड़-तोड़ लगाने वह नहीं बैठे, परंतु जिस गहरी अनुभूति को उन्होंने अपनी प्रेम-कथाओं में भर दिया, वह उन्हें लौकिक स्तर से उठाकर आध्यात्मिक भूमि पर ले गई। वास्तव में 'मसनवी' छंद का नाम है। इस छंद में सूफियों ने इतनी प्रेम-कथाएँ लिखी और वे इतनी लोकप्रिय हुई कि इन कथाओं को 'मसनवी' ही कहने लगे। वास्तव में मसनवी आख्यात्मक काव्य है।) अवयव के सूफियों ने अपभ्रंश काव्य, सिद्धों की कविता एवं अपने समय में प्रसिद्ध अवधी काव्यों में दोहा-चौपाई छंदों का प्रयोग देखा और इसी से इन्होंने इन छंदों को अपने आख्यात्मक काव्य का माध्यम बनाया। सच तो यह है कि हिन्दी सूफी प्रेमाख्यानक काव्य अवयव मसनवियाँ ही है। इन्हे इसी रूप में अध्ययन करना ठीक होगा। आख्यान के रूप में दृष्टांत सहज-गम्य होते हैं। उनसे विशेष मतवाद के प्रचार में सहूलियत भी मिलती है। इसी से सूफी काव्य की प्रिय शैलियाँ संवाद, आख्यान और दृष्टांत हैं। गजल भी उनकी अत्यंत लोकप्रिय शैली है, परंतु गजलों में सूफी सिद्धांतों की विशद व्याख्या नहीं हो सकती थी। इसलिए संवाद, आख्यान और दृष्टांत ही सूफी कवियों और साधकों को विशेष रूप से प्रिय रहे। मौलाना रूमी की

मसनवी तो 'पहलवी का कुरान' कही जाती है। साहित्य और दर्शन का जैसा सुन्दर सामञ्जस्य रूमी की मसनवी में हुआ है, वह ससार के इतिहास में दुर्लभ है। वास्तव में सूफी मसनवियों में पुराण और जातको की कथा द्वारा सिद्धांतों के प्रचार वाली परंपरा ही पुष्ट हुई है। जो चाहे कथा का रस ले, जो चाहे कथा के पीछे छिपे अध्यात्म रस का पान करे। इस तरह सूफी कदर मुल्लाओ और पीरो की क्रूर दृष्टि से भी बच गए।

मसनवी और गज़ल के अतिरिक्त सूफी-साहित्य में रुबाई का भी प्रयोग हुआ है। रुबाई छंद में विशेष रूप से व्यंग्यात्मक उक्तियाँ कही जाती हैं और जाहिद, शेख़ आदि इसके लक्ष्य होते हैं। (इस प्रकार सूफी साहित्य में तीन शैलियाँ विशेष रूप से प्रचलित रही—(१) मसनवी (२) गज़ल (३) रुबाई। मसनवी कथात्मक काव्य था। इसमें सूफी सदेशों के रूपक के रूप में उपस्थित किया जाता। रूपक नर नारी के लौकिक प्रेम का होता और शैली भावुकता के द्वारा उसे अलौकिक प्रेम का प्रतीक बनाया जाता। प्रेम-मार्ग की कठिनाई और विरह का चित्रण विशेष रूप से होता। कथाये जन-प्रसिद्ध होती। उनमें ऐतिहासिकता विशेष नहीं रहती। यदि कथा ऐतिहासिक होती तो भी इतिहास की रक्षा करने का प्रश्न नहीं उठता था। कथा का अलौकिकता-परक भावात्मक विकास ही लक्ष्य होता। गज़ल में सूफी कहानी का माध्यम छोड़ देते और स्पष्ट रूप से प्रतीकों के आधार पर भावना का प्रकाशन करते। रुबाई विचारों और व्यंग्यों को प्रकट करने का माध्यम थी और उसमें बुद्धितत्त्व की प्रधानता थी।)

जैसे जैसे सूफियों का विरोध होता गया, वैसे-वैसे गुह्य की भावना बढ़ती गई। पहले प्रतीक आये। ये प्रतीक लौकिक

और पारलौकिक दोनों पक्षों पर लागू होते थे और इनकी आड़ में इस्लाम विरोधी बात भी सरलता से कह दी जा सकती थी परंतु धीरे-धीरे ये प्रतीक भी सर्वसाधारण में प्रसिद्ध हो गये, अतः सूफियों ने कबीर की उलटबौलियों की तरह विरोधात्मक प्रतीकों का व्यापक प्रयोग किया। मसकालीन सिद्धो, नाथो (जोगियो) और सतो एव पश्चिमी मसीही संघों में इस प्रकार के विरोधात्मक प्रतीकों का प्रयोग अत्यंत प्रिय हो रहा था, और कदाचित् भोले-भाले, प्रेम-रस में डूबे इस्लामी सूफी भी इनके आकर्षक से नहीं बच सके। कुछ सूफी वस्तुतः भावना में बहुत ऊपर उठ गये थे। वेदातियों की भाँति अनल-हक्क (अहम् ब्रह्म) का अनुभव होने पर इस अनुभव के प्रकाशन के लिए उपयुक्त भाषा का मिलना असंभव था। अतः विरोधात्मक प्रतीकों से काम लिया गया। किसी ने कहा, नमाज के वक्त इमाम का मुँह मेरी ओर रहता है, काबा की तरफ नहीं। इस प्रकार आत्मा के परमात्मतत्त्व की ही घोषणा की गई। किसी ने आदम को अपना पुत्र कहा, किसी ने माता से प्रणय की बात कही। यहाँ साधक ब्रह्म-भाव से कह रहा है। साधारण जन इस बात को न समझ कर चमत्कार के फेर में पड़ जाते हैं। धीरे-धीरे विरोधात्मक प्रतीकों का प्रयोग भी पाखण्डियों के हाथ में पड़ने लगा।

(१०) सूफी साहित्य

सूफी साहित्य की तीन प्रधान शैलियों के संबंध में हम पीछे लिख चुके हैं। इस साहित्य में प्रतीकों का विशद रूप से प्रयोग हुआ है, यह भी हम बता चुके हैं। यहाँ हमें इस साहित्य की ऐतिहासिक परंपरा पर विचार करना है।

इस्लामी विद्वानों का कहना है कि अरबों के आक्रमण से

पहले ईरानियों का कोई साहित्य नहीं था। परंतु आधुनिक खोजों से इस धारणा की पुष्टि नहीं होती। ईरानियों का सबसे पहला साहित्यकार 'ज़रनुश्न' है। परंतु इनका आदि धर्म ग्रंथ कदाचित् ऋग्वेद (५००० ई० पू०—३००० पू० ई०) का समकालीन है। 'अवस्ता' ईरानियों का ऋग्वेद है जिसमें 'अहुरमज्द' की उपासना के भक्तिभारपूर्ण मंत्र गाये गये हैं। जान पड़ता है कि ईरानी आर्यों में कर्मकांड का ही विशेष प्रचार हुआ। यह उनकी संस्कृति बन गया। जिस प्रकार परवर्ती आर्यों ने उपनिषदों के आत्मदर्शनवाद के सहारे वैदिक कर्मकांडी मत के स्थान पर एक नई, सूक्ष्म भावना का आविष्कार किया, उस प्रकार की बात ईरानी धर्म संस्कृति में नहीं मिलती। परंतु कुछ स्वतंत्रचेत्ता अवश्य रहे होंगे और प्रारम्भिक ईरानी साहित्य को उन्होंने प्रभावित किया होगा, इसमें संदेह नहीं। इस्लाम के आक्रमण के कुछ समय बाद ही ईरानी सूक्तियों और कवियों ने प्रेम और विरह की जो नई रागिनियाँ अलापी, वह इस्लाम की देन तो थी नहीं। अत्रश्य ही उनकी कोई ईरानी परम्परा रही होगी। यह परम्परा नये रूप में अरबी और फ़ारसी सूफी काव्य में हमें मिलती है, यद्यपि इस्लाम से पहलू का सारा ईरानी काव्य नष्ट हो चुका है। जान पड़ता है, दीन के जाश में अरबों ने सारे ईरानी साहित्य को नष्ट कर दिया। संसार के इतिहास में किसी देश के वाङ्मय का इतना बड़ा सर्धनाश कभी नहीं हुआ है।

इस्लाम के आने के बाद वर्षों तक ईरानियों ने अरबी में कविता की यही राजभाषा थी। परन्तु कदाचित् अपने अजमी (ईरानी) भावों को वे सामी (इस्लामी) भावों से दबा नहीं सके। मानी जैसे मादन-भाव प्रधान मत का ईरान केन्द्र रह चुका था। अतः नया चोला बदल कर यही मादन-

भाव सूफी मत और सूफी काव्य के रूप में प्रकाशित हुआ । ईरान में जो सूफी साहित्य विकसित हुआ उसके तीन अंग हैं :

१—व्याख्यात्मक निबंध तथा टीका ग्रंथ । इन निबंधों में इस्लाम की नये ढंग की व्याख्या की गई है । ईरानी जातिगत साधना (मादन-भाव) का धीरे धीरे इस्नामी सामी मत में समावेश हो जा , जिससे उसका कठोरता नष्ट हो जाय और वह व्यक्तिगत साधना का रूप ग्रहण कर ले, यही इन निबंधकारों और टीकाकारों की इच्छा है । इस श्रेणी की रचनाओं में सबसे महत्वपूर्ण है गज्जाला की पुस्तक 'इहयायउलमुद्न हल्लाज की 'किताबुलतवासोन', जिली का ग्रंथ 'इंसानुलकामिल' कुशेरी का 'रिसाला' और सुहरावर्दी का 'अवारिलफुल मुआरिफ' । तर्क-वितर्क और पांडित्य से ये ग्रंथ भरे हैं । इनका उद्देश्य यही है कि सूफियों की साधना इस्लामी मानी जाय । वैसे सूफी-साधना की दृष्टि से इन ग्रंथों का विशेष महत्व नहीं ।

२—सूफियों के जीवनवृत्ता । जिस प्रकार वैष्णवों की वार्ताएँ (८४, २५२) और भक्तमाल भारतीय भक्तों की जीवनियाँ उपस्थित करते हैं और उसी प्रकार "तज्जिरातुल औलिया" (अतार) और 'नफहातुन-उंस' (जामी) जैसे ग्रन्थ सूफियों के जीवन और उनके चमत्कारों को जाचित रखे हैं । सूफी साधना में इनका महत्वपूर्ण स्थान है । भक्तों के जीवन और उनका साधना से बल नहीं लिया गया, तो बात ही क्या हुई ? सूफी-परंपरा और सूफी-मनोविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से भी ये ग्रन्थ महत्वपूर्ण हैं ।

३—काव्य । सूफी-साहित्य का प्राण सूफियों का काव्य है । यही सूफी-साधकों की सबसे महत्वपूर्ण संपत्ति है । बीसियों मसनवियाँ, हज़ारों गज़ले, सैकड़ों-हज़ारों रुबाइयों की यह

अपार निधि विश्वसाहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। वास्तव में सूफिय की काव्य-रचना उनको साधना का एक अंग है। इसी से सूफी-काव्य साधारण काव्य से अधिक भावुक है। अन्योक्ति और रूपरु के महार आत्मा की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अभिव्यक्ति की कला इसी साहित्य में देखने को मिलेगी। फारसी के सूफी कवियों में सर्वम महत्वपूर्ण है मौलाना रूमी और मौलाना हाफिज। रूमी की मसनवी 'मांतकुत्तर' धर्म, दर्शन और काव्यकला का अद्भुत सगम है। मसनवियों में रूमी का जो स्थान है, वही गज़ल में हाफिज का है। इन्हीं दो कवियों पर ईरानी सूफी कवियों का गौरव टिका है। इनके अतिरिक्त ईरान के दो और कवि भी हैं सादी और फरदौसी। सादी मुख्यतः नीति-कवि है और फरदौसी महाकाव्य-प्रणेता। (सूफियों के प्राण तो रूमी और हाफिज हैं। इन दोनों कवियों और साधकों का परवर्ती फारसी साहित्य पर इतना प्रभाव पड़ा कि कोई भी कवि बुलबुल-करुम, लैला मजनू, साकी-शराब जैसे विषयों को छोड़ नहीं सका। व्यक्त या अव्यक्त रूप में सारा ईरानी काव्य सूफी मतवाद का प्रचारक बन गया। जांसी ने 'यूसुफ व जुलैखा' लिखकर मसनवियों की परंपरा को आगे बढ़ाया और यह परंपरा शताब्दियों तक बराबर चलती रही।)

(हिन्दोस्तान में जो सूफी काव्य लिखा गया, वह भी कम नहीं है। वास्तव में सूफियों के लिए काव्य-रचना भी साधना का एक अंग था. अतः प्रारंभ से ही काव्य लिखे गये। पिछले एक अध्याय में हम हिंदी सूफी काव्य पर विचार कर चुके हैं। प्रारंभिक भारतीय सूफियों में साहित्यकार के रूप में सबसे प्रसिद्ध अमीर खुसरो (१२५३-१३२५) है। परंतु उनका सूफी काव्य फारसी भाषा में ही है। हिंदी में उनकी कविता केवल

मनोरंजन को लेकर ही चली। वास्तव में भारत में मय में पहले बृहद् रूप में सूफी-साहित्य कबीर (मृ०१३६८) में ही मिलता है और फिर दादू, रज्जव आदि निर्गुणियों में इस साहित्य की परंपरा चलती रहती है। हिंदवी म प ली मसनवी की रचना १४०० ई० में पहले नहीं हुई। अबधी सूफी काव्य में क्रमशः सपनावति, मुगुधावति, मृगावति और मधुमालती के नाम आते हैं। मृगावती के लेखक कुतबन का समय १४६३ ई० है। इस प्रकार वे कबीर के समकालीन हुए। सपनावति और मुगुधावति उपलब्ध नहीं हैं, परंतु वे मृगावती से पहले १५वीं शताब्दी की ही रचनाएँ हैं। इससे स्पष्ट है कि मसनवी शैली में हिंदवी या अबधी भाषा में पहली रचना १४०० ई० के बाद ही हुई, यद्यपि गजल और लोक-छंदों के एक शताब्दी पहले कबीर इस भावना को काव्य-विषय बना चुके थे और थोड़ी बहुत काव्य-रचना मुईनउद्दीन चिश्ती (११४२ ई०) के समय से ही हो रही होगी ।)

सच तो यह है कि 'सपनावती' लिखकर जिसने भी अबधी सूफी-काव्य का प्रवर्तन किया, उसने बड़ा क्रांतिकारी काम किया। उसने विक्रमाजीत की जगत-प्रसिद्ध कहानी को चुना, भारतीय परंपरा में लोकप्रिय दोहा चौपाई छंद अपनाये और भारतीय साहित्य शैली को ही अपनाया। फारसी मसनवी को हिंदी चोला देना सहज काम नहीं था, परंतु जब वह काम हो गया तो इस प्रकार के काव्य की एक परंपरा ही चल पड़ी जो १८वीं शताब्दी तक चलती रही। १६०० ई० के बाद दक्षिण में भी हिंदवी या 'दकनी' में अनेक मसनवियाँ लिखी गईं, परंतु वह फारसी मसनवियों की परंपरा से अधिक प्रभावित है। उनकी साहित्यिक महत्ता भी अधिक नहीं है। दक्षिण के सूफी साहित्य की महत्ता ऐतिहासिक है। खड़ी बोली हिंदी के विकास के

इतिहास की दृष्टि से वह महत्वपूर्ण है। परंतु साहित्य की दृष्टि से उत्तर का सूफी साहित्य ही प्रधान है। सच तो यह है कि तबस्मुफ (सूफीमत) को सबसे उर्वर भूमि भारत में मिली। सिंध-विजय (७१२ ई०) में कुछ ही बाद मुलतान सूफियों का अड्डा बन गया। सिंध और पंजाब में ही सूफी जोगियों (नाथों) से परिचित हुए और उनसे प्रभावित भी हुए। साधकों के रूप में इन सूफी-संतों की प्रसिद्धि शासक रूप में इस्लाम के आने से पहले ही हो चुकी थी और मुईनुद्दीन चिश्ती (११४२ ई०) जैसे प्रसिद्ध साधक भारत की भूमि में समाधिस्थ हो चुके थे। इस्लाम तलवार लेकर आया, सूफी प्रेम की बांसुरी लेकर। तुर्कों और पठानों ने देश की देह जीती, परंतु देश का हृदय सूफियों ने ही जीता। इनके अनेक सिलसिले (संप्रदाय) प्रसिद्ध हुए जिनमें सबसे महत्वपूर्ण चिश्ती, सुहरावर्दी, कादिरी, शक्तारी और नकशबंदी हैं। अबधी सूफी काव्य जिन सूफियों ने लिखे वे इन सिलसिलों से ही संबंधित थे। मंफन, कुतबन, जायसी, नूरमुहम्मद इनमें प्रसिद्ध हैं। स्वतंत्र (जिदीक) सूफी भी हुए। इनका संबंध किसी सिलसिले से नहीं था। वे इस्लाम-मतावलंबी ही, यह बात भी नहीं। पदों, गजलों और लोकछंदों में इन्होंने भी हिंदी सूफी काव्य की रचना की। कबीर, दादू, यारी, दरिया आदि निगुणों मूलतः सूफी हैं। इस्लाम के कट्टर प्रेमियों ने तलवार द्वारा जिस देश-व्यापी घृणा का प्रचार किया, उसे सूफियों ने प्रेम की बंसो बजा-बजाकर भुलवा देना चाहा। वे बहुत कुछ सफल हुए। १८वीं शताब्दी में प्रत्येक विचारशील मुसलमान ज्ञात या अज्ञात रूप में सूफी था। अनेक हिंदू भी सूफी-साधन में लीन थे। और वे मुसलमानों के भी आदर के पात्र थे। प्रकाशान्तर में इस्लाम के प्रचार में सूफियों से जो सहायता मिली

हो, उन्हें 'उस्ताम का प्रच्छन्न प्रवारक' कहना अन्याय होगा । उनकी प्रेम की पीर' वैयक्तिक थी । इस पीर ने जिन्हें प्रभावित किया, वे स्वतः उनकी ओर झुके । सत्ता, निर्गुणियों और पुष्टि-मार्गी भक्तों ने सामान्य मानव-भूमि खोज ली थी । वह थी सामान्य प्रेम-धर्म की भूमि । औरगजेव के उत्पातों से यह भूमि ढाँवाडोल हो गई । फिर भी गदर (१८५०) तक सूफी न हिंदू था, न मुसलमान । मुसलमान वह इतना ही था कि वह काफ़िर नहीं समझा जाता था । गदर के बाद जो राजनैतिक वात्याचक्र चला, उसमें हिंदू-मुसलमानों के अलग अलग अखाड़े बन गये और सूफियों की माधना पर पटाक्षेप हो गया ।)

मलिक मुहम्मद जायसी : जीवनी, व्यक्तित्व और रचनाएँ

(हिंदी सूफियों की यह प्रेम-साधना जिन कथा-काव्यों में सुरक्षित है, उनमें मलिक मुहम्मद जायसी का पद्मावत (१५४० ई०) सबसे महत्वपूर्ण है। हिंदी साहित्य की दृष्टि से तो यह ग्रन्थ और भी महत्वपूर्ण है। ३४ वर्ष बाद (१५७४) में जब गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस की रचना की, तब यह ग्रन्थ अवश्य उनके सामने रहा होगा और कदाचित् इसकी लोकप्रियता के कारण ही उन्होंने पद्मावत की शैली और उसी के छंदों में रामकथा कही। जिस 'प्राकृत जन-गुन-गान' को तुलसी ने घृणा की दृष्टि से देखा है, वह कदाचित् रत्नसेन और पद्मावती की यही प्रेम-कहानी है। उत्तरकांड में तुलसी ने ऐसे मलिंगों को हँसी उड़ाई है जो 'प्रेम-प्रेम' चिल्लाते फिरते थे। यह सूफी ही रहे होंगे। जो हो, सूफी काव्य में एक विशेष प्रकार की साधना सुरक्षित है। वह हिंदू-साधना नहीं है, इससे उसका महत्व कम नहीं हो जाता। भाषा और साहित्य की तो साधना वह है ही, इसमें तो कोई मतभेद हो नहीं सकता।)

'पद्मावत' के रचयिता मलिक मुहम्मद जायसी हैं। जायसी की रचनाओं में अनेक स्थानों पर उनके आत्मकथन

मिल जाते हैं। इनके आधार पर हम उनकी जीवनी और उनके व्यक्तित्व का निर्माण कर सकते हैं।

अंतर्साध्य के आधार पर पता लगता है कि जायसी का जन्म मुहम्मद साहब की नवी सदी (ईसा की १७वीं शताब्दी) में हुआ^१। उनके जन्म के समय कदाचित् कोई बड़ा भूकंप आया था^२ और कुछ दिनों बाद सूर्यग्रहण पड़ा था^३। अपने जन्मस्थान के संबंध में जायसी मौन है, क्यों ? यह कहा नहीं जा सकता। परंतु वे जायस में पहले-पहल दस दिन के लिये पाहुने के रूप में आये थे। यही उन्हें वैराग्य हो गया और वे यहीं रहने लगे। इस नगर का आदि नाम उन्होंने उद्यान (उद्यान + नगर या उदयनगर) बताया है।^४ इस नगर की कुछ धार्मिक महत्ता भी उस समय रही होगी। इसी से जायसी ने उसे 'धर्मस्थान'^५ कहा है।

कवि के व्यक्तित्व के संबंध में भी थोड़ा उल्लेख है। वे कदाचित् जन्म से काने नहीं थे, परंतु बाद में बायाँ कान और

१ भा औतार मोर नौ सदी (जा० ग्र०, ३८४)

२ आवत उवत-चार विधि ठाना । भा भूकंप जगत अकुलाना ॥
धरती दीन्ह चक्र-विधि भाई । फिरै अकास रहँट के नाई ॥

३ सूरज सेवक ताकर अहै । आठौ पहर फिरत जो रहे ॥
सो अस बपुरै गहनै लीन्हा । ओ धरि बोधि चडालै दीन्हा ॥

४ जायस नगर मोर अस्थानू । नगर क गाँव आदि उदनानू ॥
(वही पृ० ३८५)

तहाँ दिवस दस पहुँनै आएउँ । या बैराग बहुत सुख पाएउँ ॥

५ जायस नगर धरम अस्थानू । तहाँ आह कवि कीन्ह बखानू ॥
(वही पृ० ६१०)

बायी आँख जाती रही थी। कदाचित् चेचक के कारण।^६ उनका कंठस्वर बड़ा भीठा था और जायस में आते ही गायक के रूप में उनकी प्रसिद्धि हो गई थी। जिसने सुना मुग्ध हो गया। कदाचित् जो गात, वह उनकी रचना होती।^७

अपनी रचना में जायसी ने बाबर^८ और शेरशाह का नाम लिया है^९। उन्होंने शेरशाह को दिल्ली मुल्तान लिखा है। सूर्यग्रहण और भूकंप के तिथि-वार भी हमें प्राचीन ऐतिहासिक उल्लेखों से मिल जाते हैं^{१०}। सूर्यग्रहण का समय ६०८

६ मुहम्मद वार्ड दिसि तजा एक सरवन, एक आवि (वही, १८५)

७ एक नयन कवि मुहम्मद गुनी ।

सोद विमोहा जेइ कवि सुनो ॥ (वही, पृ० ६)

(जान पड़ता है जायस जायसी का जन्म-स्थान नहीं था। वे दस दिन के पाहुने के रूप में चले आये, परंतु पीछे वैरागी बन गये। 'आग्विरी कलाम' की रचना वैरागी बनने के बाद की बात है। संभव है इसके बाद लेखक कहीं चला गया। कदाचित् कालपी। यहीं वह सूफीमत में दीक्षित हुआ और उसे अपने मोहन कठ के द्वारा 'कवि' के नाते प्रसिद्धि भी मिल गई। यह भी संभव है पञ्जावत की रचना प्रवास में हुई हो और सूफी दृष्टिकोण के कारण शीघ्र ही प्रसिद्ध हो गई। जायस को वर्मस्थान मान कर कवि ने उसे ही अपना स्थान बना लिया।)

८ बाबरशाह छत्रपति राजा, '०६

९ सेरसाह दिल्ली मुल्तानू ॥

१० अलबदाउनी के मुन्तखिव तवारीख में इसका स्पष्ट उल्लेख है।

इण्डियन कलेण्डर (राबर्ट सीवेल और शकर बालकृष्ण दीक्षित, १८६६) के अनुसार वह सूर्यग्रहण १० दिसम्बर १५०२ ई० में पड़ा था।

हिजरी (१० दिम्ब्वर १५०२) है और भूकंप का ६११ हिजरी। आखिरी कलाम की रचना का समय कवि ६३६ हिजरी बताता है^{११}। इसी रचना में वह नवी (या नौ = नव) सदी में जन्म के बात कहता है और तीस वर्ष की अवस्था में कविता-रचना की बात^{१२}। पद्मावत में जायसी ने उसका रचनारंभ काल ६४७ हिजरी कहा है^{१३}। परंतु इसे कुछ लोग लिपिभेद से ६२७ भी पढ़ते हैं^{१४}। इन सब तिथियों में संगत बिठाना कुछ कठिन काम है। डॉ० कमल कुलश्रेष्ठ का कहना है कि 'अ खिरी कलाम' जायसी की अंतिम रचना है। रचना-काल निर्विवाद रूप से ६३६ हिजरी है। अतः पद्मावत इससे पहले की रचना हानी चाहिये। इससे उनके विचार में पद्मावत की तिथि ६२७ हिजरी है। परंतु ६२७ ई० में इब्राहीम लोदी का राज्य था, अतः कथारम्भ में कवि शाह्वेक के रूप में शेरशाह को याद नहीं कर सकता था। इसकी पटरी यों ठीक बिठाई गई कि वास्तव में ग्रंथ-रचना का आरंभ ६२७ ई० में इब्राहीम लोदी के शासन-काल में हुआ और उसका अंत शेरशाह के समय में। कवि ने "भूतकालिक क्रिया का प्रयोग

११ नौ सौ बास छत्तिस जब मए ।

तत्र एहि कथा के आखर कहै ॥

१२ भा अवतार मोर नौ सदी ।

तीस बरस ऊपर कवि बदी ॥

१३ सन नौसै सैतालिस अहा ।

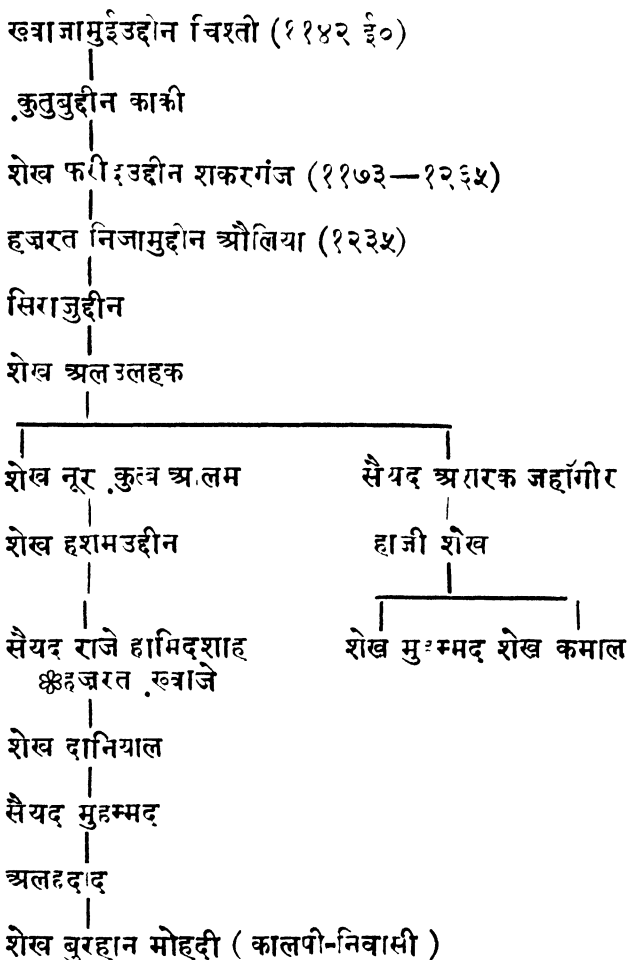
कथा अरभ बैन कवि कहा ॥

१४ सन नौ सै सत्ताइस अहा । फारमी लिपि में यदि नुकते हटा दिये जायें तो सैतालिस और सत्ताइस एक ही तरह लिखे जायेंगे ।

करते हुए प्रारंभ-काल दिया और सामयिक राजा के रूप में शेरशाह की प्रशंसा की।" ईसाई संवत् के रूप में १५२७ का अर्थ है १५२० ई०। इब्राहीम लोदी का समय १५१६—२० है। १५२० ई० में ग्रंथ-रचना के समय कवि ने सुलतान इब्राहीम लोदी का नाम क्यों नहीं लिया, यह चित्य है। कवि की रचनाओं में बाबर (१५२६—१५३०) और शेरशाह (१५४०—१५४५) का नाम दिल्लीपति के रूप में आता है। इससे स्पष्ट है कि जायसी का रचना-काल १५२६ और १५४५ के बीच में पड़ता है। बाबर का संबंध 'आखरी' कलाम से है। इसका समय जायसी ने ६३६ (१५२६) दिया है। इस समय बाबर जीवित था, अतः शाहेवक्तु के रूप में उसी का नाम दिया गया। ६४७ हिजरी (१५४० ई०) में शेरशाह दिल्ली का सुलतान बना गया था। इस प्रकार दोनों ग्रन्थों की तिथियों में कोई विरोध नहीं पड़ता। निश्चय ही १५४० ई० में पद्मावत की रचना आरंभ हुई, वह कब समाप्त हुई इसके सबंध में कोई निर्देश नहीं है। तीस वर्ष की आयु में जायसी कवि के रूप में प्रसिद्धि पाने लगे थे—'कवि वदी' से यही आशय है। 'नौ' सदी का अर्थ 'नई' सदी लेने पर यह स्पष्ट है कि जायसी का जन्म ६०० हिजरी (१४६३) में हुआ। ३० वर्ष की अवस्था में वे कवि रूप में प्रसिद्ध हुए (१५२३)। पानीपत की लड़ाई के तीन वर्ष बाद जब बाबर 'साह छत्रिपति राजा' था उन्होंने 'आखरी कलाम' (१५२६) का रचना की और इसके ग्यारह वर्ष बाद पद्मावत (१५४०) को लिखना आरंभ किया। इस समय जायसी ४७ वर्ष की प्रौढ़ अवस्था को प्राप्त कर चुके थे। डॉ० कमल कुलश्रेष्ठ की गणना के अनुसार जायसी का जन्म ६०६ हिजरी (१४६६ ई०) में हुआ और पद्मावत (१५२० ई०) उनकी २१ वर्ष की आयु की रचना

ठहरती है। पद्मावत जैसे प्रौढ़-काव्य की रचना २१ वर्ष का युवक कर यह कुछ असंभव सी बात है। फिर 'आखिरी कलाम' (१५२६ ई०) की भाषा-शैली में प्रौढ़ता के चिन्ह भी नहीं मिलते और उसमें इस्लामी भाव भरे पडे हैं, सूफी चिन्तना का जरा भी पता नहीं है। स्पष्ट है कि 'आखिरी कलाम' (१५२६ ई०) २६-३० वर्ष के युवा की रचना है। इसमें आदि सं अंत तक इस्लामी कट्टर भावना है। स्वर्ग और नरक के जो चित्र साधारण मुसलमान युवा के मन में नाचते हैं, वही इसमें मिलेगे। भ्रम का कारण ग्रंथ का नाम जान पड़ता है। कदाचित् जायसी ने इसका कोई नाम नहीं रखा। फारसी में 'आखिरियत नामा' (रोजे अखीर की कथा) की परंपरा थी। यह उमी का अवधी रूप है। इसी विचार से किसी ने ग्रंथ को 'आखिरी कलाम' कह दिया और आलोचक इस भ्रम में पड गये कि यह जायसी की अंतिम रचना है। कट्टर इस्लाम सं सूफी मत की ओर बढ़ना प्रगति के चिन्ह है। इसके विपरीत जो है, वह अवःपतन है। पद्मावत के रचायिता से हम यह आशा नहीं करते कि वह अंतिम रचना के रूप में कट्टर इस्लामी विचारधारा का पोषण करे। हो सकता है, 'कथा-आरंभ बैन' के रूप में पद्मावत की प्रारंभिक पंक्तियाँ कवि ने मुख्य काव्य-रचना के बाद की हो। तब १५४० ई० में पद्मावत समाप्त समझा जाना चाहिये। इस प्रकार पद्मावत का रचनाकाल १५२३ और १५४० ई० के बीच का समय रहेगा।

जायसी ने अपने ग्रंथों में अपनी गुरु-परंपरा भी दी है। भारतीय सूफियों की गुरु-शिष्य-परंपरा से मेल बिठाने पर वृत्त कुछ इस प्रकार होगा—



*जायसी न सैयद राजे और शेख दानियाल के बीच की शृङ्खला के रूप में हजरत ख्वाजे का नाम भी दिया है। परन्तु ऐतिहासिक ग्रन्थों और अन्वेषकों के अनुसार जायसी की जो गुरु-शिष्य-परम्परा मिलती है उसमें हजरत ख्वाजे का नाम नहीं है।

जान पड़ता है, कालपी की पीर-गद्दी की स्थापना सैयद अशरफ जहाँगीर ने की थी। परंतु कालांतर में उनकी परंपरा नहीं चल सकी। जायसी का संबंध सैयद अशरफ जहाँगीर के गुरुभाई की परंपरा से था, परंतु वस्तुतः इससे कोई भेद नहीं आता था। इसी में आदिगुरु के रूप में जायसी ने अत्यंत श्रद्धा से सैयद अशरफ का नाम लिया है। वे स्वयं शेख बुरहान मुहम्मदी से दीक्षित थे। कदाचित् १५२६ ई० से पहले ही वे दीक्षा प्राप्त कर चुके थे। इस वृत्त से जायसी का संबंध प्रसिद्ध चिश्ती वंश से हो जाता है।

जायसी का कथन इस प्रकार है—

सैयद अशरफ पीर पियाग। जेहि मोहि दीन्ह पंथ अजियारा
ओहि घर रतन एक निरमरा। हाजी सेख सबै गुन भरा
तेहि घर दुइ दीपक उजियारे। पथ देख कहँ दई सँवारे
सेख मुहम्मद पून्यो न्यरा। सेख कमाल जगत निरमरा
(जायसी ग्रन्थावली, पृ० ६)

गुरु मोहिदी खेवक मै सेवा। चलै उताइल जेहि कर खेवा।
अगुवा भये सेख बुराहानू। पथ लाइ मोहि दीन्ह गियानू।
अलहदाद भल तेहि कर गुरू। दीन दुनी रोमन सुरखुरू।
सैयद मुहम्मद के वे चेना। सिद्ध पुरुष सगम जेहि खेला।
दानियाल गुरु पथ दिखाये। हजरत खाज खिजिर तेहि पाए।
भये प्रमन्न ओहि हजरत खाजे। लिए मेरइ जहँ सैयद राजे।

(वही, पृ० ६)

मानिक एक पाएउँ उजियारा। सैयद अशरफ पीर पियाग ॥

(वही, पृ० ३८६)

पा—पाएउँ गुरु मोहिदी मीठा। मिना पंथ सो दरसन दीठा।
नात्र पियार सेख बुरहानू। नगर कालपी हुत गुरु थानू।
औ' तिन्ह दरस गोसाई पावा। अहलदाद गुरु पथ लखावा।

जायसी ने अपने चार मित्रों का उल्लेख किया है--मलिक यूसुफ, सलार कादिम, सलोन मियाँ और बड़े शेख । कदाचित् जायस में आने पर ही उन्हे यह मित्र मिले थे । इनमें बड़े शेख सिद्ध पुरुष थे और यूसुफ मलिक भी बड़े पंडित ज्ञानी थे । सेलार कादिम और सलार मियाँ युद्ध वीर थे । उन्होंने बहुत से युद्धों में भाग लिया था । इससे अधिक जायसी इन मित्रों के विषय में परिचय नहीं देते । १५

यह तो हुई अतर्भाक्ष्य की बात । बाह्यसाक्ष्य और जनश्रुति से जायसी के सबंध में जो मालूम होता है, उसके संबन्ध में हम पूर्णतः निश्चित नहीं हो सकते । उनके जन्म-स्थान को कोई जनश्रुति जायस १६ बताती है, कोई गार्जापुर १७ । मानिकपुर जिला प्रतापगढ़ में उनकी ननिहाल बताई जाती है १८ । पिता और भाइयों के संबन्ध में भी कुछ कहा जाता

अलहदाद गुरु सिद्ध नवेला । मयद मुहमद के वे चेला ।
मेयद मुहमद दीनहि माचा । दानियाल सिख दीन्ह सुबाचा ।

(वही पृ० ३६४)

चारि मीन कवि मुहमद पाए । जोरि मितार्ई सिर पहुँचाए ॥
यूसुफ मलिक पंडित बहु ज्ञानी । पहलै भेद बात वै जानी ॥
पुनि सेलार कादिम मतिमाहों । खाँडे दान उवै निति बाहों ॥
मिया मलोने सिव बरियारू । बीर खेतरन खडग जुभारू ॥
शेख बड़े बड सिद्ध बखाना । किए आदेश सिद्ध बडा माना ॥
चारिउ चतुरदमा गुन पढे । ओ मजोग गोसाईं गढे ॥

(वही, पृ० १०)

१६ सावारण जनश्रुति

१७ ना० प्र० प०, भाग १४, पृ० २६१

१८ वही, भाग २१, पृ० ४३

है। कहा जाता है कि इनके माता-पिता की मृत्यु बचपन में ही हुई थी और वे फकीरो और साधुओं के साथ रहने लगे थे^{१६}। 'किसी-किसी जनश्रुति में इनके वैवाहिक जीवन और पुत्रों का भी उल्लेख है^{२०}। अमेठी के राजा को इन पर बड़ी श्रद्धा थी और वे अमेठीराज्य में आदर-सत्कार के साथ बहुत दिनों रहे और अन्त में वही पर मृत्यु को प्राप्त हुई^{२१}। जायस में उनका मकान और अमेठी में उनकी कब्र आज भी दिखलाये जाते हैं। पता नहीं, यह सब कहाँ तक सच है।'

जा हो, इसमें अनिश्चय नहीं कि मलिक मुहम्मद का संबंध जायस से था। वे वहाँ कहीं से आए और अपने प्रेम-विरह के छंदों के मधुर पाठ के कारण एकदम प्रसिद्धि को प्राप्त हो गये। जायस में उनका वरा आज भी उपस्थित है। इससे संभव है, उनका पितागृह जायस ही रहा हो, परंतु उनका जन्म और पोषण अन्यत्र हुआ हो। संभव है, प्रारंभिक जीवन में वे कालपी से संबंधित रहे हों और वही उन्होंने शेख बुरहान से दीक्षा ली हो। संभव है, 'आखिरी कलाम' और पद्मावत की रचना का आरंभ भी वहाँ हुआ हो। दोनों पुस्तकों में गुरु-वंश का जो श्रद्धात्मक वर्णन है, उससे इस ओर इंगित मिलता है। युवावस्था में वे जायसी आकर जायस के ही हो गये। बाद में 'जायसी' के रूप में भी ही उनकी प्रसिद्धि हुई। जनश्रुति शेरशाह^{२२} और अकबर से भी उनका संबंध जोड़ती है। इससे आगे हम नहीं जा सकते।

जायसी का व्यक्तित्व प्रभावशाली नहीं था। वे कुरूप थे। चंचक-रूप थे। काले थे। कदाचित् लोग उन्हें देखकर हँसा करते

^{१६} वही, पृ० ४३, ^{२०} वही पृ० ५०

^{२१} नागरी प्रचारिणी 'पत्रिका, भाग २१, 'पृ० ५८, जायसी प्रथावली पृ० ९-१५, ^{२२} ना० प्र० प० भाग २१, पृ० ८७

थे परंतु उम भोडे व्यक्तित्व के पोछे उनका 'प्रेम की पीर' से भरा हृदय था। भाव-विभोर होकर सुन्दर कंठ से जब वे स्वरचित पद गाते ता जो सुनता मुग्ध हो जाता। इस विशेषता के कारण इनके पदों (दाहों) की प्रसिद्धि इनके जीवन में ही हो गई थी। कदाचित् इनके सौन्दर्य से ही प्रभावित होकर अवध-प्रदेश में जायसी की लोकप्रियता जानकर ही तुलसी ने 'पद्मावन' की शैली में रामचरितमानस की रचना की।

इसके बाद कुछ जायसी की रचनाओं के संबंध में।

जायसी की रचनाओं के नाम के लिए हमारे आधार हेतासी, रामचंद्र शुक्ल, चंद्रबली पाडेय की खोजें और सैयद कल्बे मुस्तफा का ग्रंथ। इनसे हमें २१ रचनाओं का पता चलता है^{२३}। इनमें से बहुत सी रचनाएँ केवल जनश्रुति में ही सुरक्षित हैं। नाम-मात्र के अतिरिक्त उनके संबंध में हम विशेष कुछ नहीं जानते। जो ग्रंथ उपलब्ध कहे जाते हैं, उनमें संबंध में भी अभी खोज नहीं हुई है, अतः निश्चय रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता।

२३—^१पद्मावती, ^२अवरावट, ^३आश्वरी क्लाम, ^४सखरावत, ^५चपावत, ^६इतरावत, ^७मटकावत, ^८चित्रावत, ^९खुर्बानामा, ^{१०}मोराईनामा, ^{११}मुकहरानामा, ^{१२}मुखरानामा, ^{१३}पोस्तीनामा, ^{१४}मुहरानामा, ^{१५}कहारनामा, ^{१६}सखरावट (होली नामा) [चंद्रबली पाडेय], ^{१७}स्फुट छन्द, ^{१८}वनावत, ^{१९}मोरठ, ^{२०}परमार्थ जपजी [सैयद कल्बे मुस्तफा], ^{२१}नेनावत [जा० ग्र० भूमिका, पृ० १६]। पहली तीन पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकें केवल जनश्रुति द्वारा ही चली आती हैं। मोरठ और जपजी हस्तलिखित प्रतियाँ वेगारल एशियाटिक सोसाइटी में बतवाई जाती हैं और वनावट की डा० स्पेंगर के पास। पोस्तीनामा की कुछ प्रतियाँ भी उपलब्ध हैं, परंतु वह तुकबंदी मात्र हैं। नेनावत को प० रामचंद्र शुक्ल प्रेमकहानी कहते हैं। इससे अधिक इन

इस प्रकार जायसी के तीन ही ग्रंथ निश्चय रूप से उनके कहे जा सकते हैं। जायसी ग्रंथावली में इन्हीं का संग्रह है। ये हैं पद्मावत, अखरावट और आखिरी कलाम। आखिरी कलाम १५२६ की रचना है, पद्मावत १५२० में १५४० तक की। अखरावट की रचना-तिथि नहीं मिलती। परंतु वह पद्मावत के पहले की रचना होगी। कदाचित् कबीर के अक्षरानुसार लिखे ग्रंथों (ककहरा आदि) से प्रभावित होकर ही इसकी रचना हुई हो। यह आरंभिक रचना ही ठहरेगी। जायसी का सब से महत्वपूर्ण ग्रंथ पद्मावत (१५४०) है। जैसा हमने पहले लिखा है, 'पद्मावत' प्रेमाख्यानों की एक परंपरा से आवद्ध है। मध्ययुग में प्रेम-कथाओं के प्रति विशेष आकर्षण था और अनेक प्रेम-कथाएँ वीर-गाथाओं के साथ मिलकर लोकोगीतों का रूप प्राप्त कर चुकी थीं। 'वीसलदेव रासो' (११५५ ई०) हमारा पहला प्रेमाख्यान है। इसके बाद आल्हा-उदल और पृथ्वीराज रासो की प्रेम कथाएँ आती हैं। हिन्दू लेखकों द्वारा लिखी दो पुरानी प्रेमकथाएँ कुतुबशतक (कुतुबुद्दीन और साहिब की प्रेम-कथा) और जलाल गहाणी

पुस्तकों के सभन में कुछ ज्ञात नहीं। जब तक हस्तलिखित प्रतियों का अध्ययन नहीं हो जाता और जायसी के अन्य अप्राप्य ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होते, तब तक जायसी की कीर्ति का आधार केवल पहले तीन ग्रन्थ ही रहेंगे और इन्हीं के आधार पर उनकी साहित्यिक प्रतिभा का निर्णय हो सकेगा। संभव है, ऊपर जायसी की पुस्तकों की जो सूची दी गई है, उनमें एक ही पुस्तक कई बार बदले हुए नामों से आ गई हो। फारसी लिपि के अनुसार मुकुहरानामा, मुखरानामा, महरानामा, मखरावटनामा लगभग एक ही प्रकार से लिखे जायेंगे। जो ही, जायसी की रचनाओं के सभन में परिस्थिति अनिश्चित है।

री बात (जलाल और गहाणी को प्रेम-कथा) है। इनके लेखक और निर्माण-काल के संबंध में हमें विशेष कुछ ज्ञात नहीं, परंतु कदाचित् यह प्रसिद्ध लोक-कथाओं के साहित्यिक रूप थे। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक प्रेम-कथाओं की परंपरा चली आती है। यह परंपरा इस प्रकार है : सत्यवती कथा (ईश्वरदास आ० का० १५०० ई०) २४ लक्ष्मणसेन-पद्मावती (दोमा १४५६), मधु-मालती २६ (मंफन, १५०० ई० और १५५० ई० के बीच), ढोला मारवणी चउपई (हरराज, १५५०), माधवानल कामकंदला (आलम, १५८२), रसरतन (पुहकर, १६१८), पद्मावत (जायसी, १५४०), चित्रावली (उसमान, १६१३), ज्ञानदीप (शेख नबी, १६१६ ई०), कनक-मंजरी (काशीराम, १६६३), हंस-जवाहिर (कासिमशाह, १७३१), इद्रावती (नूरमुहम्मद, १७४४), अनुराग बाँसुरी (नूरमुहम्मद, १७६४), चंद्रकला (प्रेमचंद, १७६६), कामरूप की कथा (हर-सेवक मिश्र, १८४४), प्रेमपयोनिधि (मृगेन्द्र, १८६५), पद्मिनी चरित्र (लालचंद, १६४३ ई०), नल-दमयन्ती कथा २७ (सूरदास, १७वीं शताब्दी) . चतुर्मुकुट की कथा (१८वीं शताब्दी) और यूसुफ-ज़ुलैखा (१८वीं शताब्दी) । इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेम-कथाओं की परंपरा हिंदी के आदि काल से उन्नीसवीं शताब्दी तक बराबर चली आ रही है। यह सारी

२४ सिकंदर शाह (१४८९ ई०—१५१७ ई०) के समय वर्तमान । २५-२६ सूफ़ी प्रेमाख्यानक काव्य ।

२७ सूफ़ी कथा है। लेखक का नाम सूरदास है परंतु यह प्रसिद्ध सूरदास नहीं, कोई कायस्थ हैं। नागरी प्रचारिणी पत्रिका के एक अंक में डॉ० मोतीलाल, म्यूरेटर बबई म्यूज़िअम ने इस ग्रन्थ की एक प्राचीन प्रतिलिपि का विवरण दिया है।

कथा मुख्यतः अवधी भाषा या राजस्थानी में है। अवधी भाषा की कथा में दोहा-वौपाइयो का ही प्रयोग मिलता है। ये तो हुई काल्पनिक रोमांच कथाएँ। पौराणिक प्रेम-कथाओं की संख्या भी बहुत अच्छी थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्ययुग में अनेक प्रेम-कथाएँ जनता में प्रचलित थीं और कवि उन्हें काव्य का विषय बना रहे थे। सूफी कवियों ने इन्हीं जन-प्रसिद्ध कवियों को अपने काव्य का आधार बनाया। (साधारण लौकिक प्रेम-कथा में उन्होंने अनुभूति की इतनी तीव्रता भर दी कि उससे अलौकिक प्रेम की व्यंजना होने लगी।)

स्वयं अलाउद्दीन और पद्मावती को लेकर अनेक रचनाएँ हुईं। परंतु कहीं भी कोई लेखक इतिहास का अतिक्रम नहीं कर सकता था। अतः अलाउद्दीन को लेकर आदर्श प्रेमी नायक का निर्माण नहीं हो सकता था। रतनसिंह (लक्ष्मणसिंह) और पद्मावती (पद्मिनी) को लेकर ही प्रेमकथा चली। अलाउद्दीन तो खल-नायक है। वास्तव में साधारण प्रेमकथा रतनसिंह की पद्मावती की प्राप्ति पर समाप्त हो जाना चाहिये। 'पद्मिनी चरित्र' में रतनसेन (रतनसी) भाटों द्वारा पद्मिनी के रूप का वर्णन सुनकर उस पर मोहित हो जाता है। कुछ समय बाद पटरानी प्रभावती से रूठ कर वह घर से निकल जाता है। रानी ने राजा के सामने जो भोजन रखा था, वह उसे पसंद नहीं आया। इस पर रानी ने चिढ़कर कहा कि यदि मेरा भोजन अच्छा नहीं लगता तो, कोई 'पद्मिनी' ले आओ। इस पर रतनसेन उठ खड़ा हुआ। समुद्रतट पर पहुँचने पर औषधनाथ सिद्ध ने उसे अपने योगबल से सिंहलद्वीप पहुँचा दिया। वहाँ राजा की बहिन पद्मिनी के स्वयंवर की मुनादी हो रही थी। राजा ने अपना पराक्रम दिखाकर पद्मिनी को प्राप्त किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अलाउद्दीन-पद्मावती की कथा जायसी के बचपन में लोकप्रिय हो गई थी। लोकगीतकारों और साहित्यकारों ने इसके अनेक रूप जनता में प्रचलित कर दिये थे। १३०३ ई० की चित्तौड़ की चढ़ाई और १३०४ ई० और रणथंभौर की विजय इतनी महत्वपूर्ण थी कि कन्या-कुमारी से हिमालय तक हमें इनकी गूँज सुनाई पड़ती है। हिन्दू जनता के लिए चित्तौड़ और रणथंभौर स्वतंत्रता के प्रतीक थे। इसी से हम्मीर और रतनसेन (लक्ष्मणसेन) कथाओं के नायक बने और इन नायकों को विशेष गुणसंपन्न बताया गया। गोरा-बादल, पद्मिनी और रतनसेन वीरत्व और सतीत्व के प्रतीक बनकर सामने आये। 'आल्हा' का भी प्रभाव पड़ा जान पड़ता है। पद्मावती का जौहर सारे हिन्दुओं का भाल-तिलक बन गया और दासत्व की गठरी ढोते हुए भी वह इस टीक का भार ग्रहण नहीं कर सके। अलाउद्दीन खल-नायक से बढ़ कर माना गया है। खल-नायक तो वह था ही, जायसी ने 'माया' भी कहा है। यह माया या वासना साधक और मुआरिफ (प्रज्ञा) के बीच में भेद डाल देती है और मनुष्य धार्मिक वृत्ति से नीचे उतर कर फिर सांसारिकता में लीन होने लगता है। राघवचेतन नाम के एक नए चरित्र की अन्वेषणा जायसी ने की है। कहा नहीं जा सकता कि यह नया पात्र कहाँ तक ऐतिहासिक है। जायसी ने इसे आध्यात्मिक अर्थों में "शैतान" कहा है। शैतान मनुष्य को सत्पथ की ओर से विरक्त कर देता है और उसे कुपथ की ओर बरगलाता है। अलाउद्दीन को कुपथ की ओर ले जाने की चेष्टा राघवचेतन ने ही की है। गुरु (हीरामन) जहाँ रतनसेन को लक्ष्य की ओर ले जाता है, वहाँ शैतान अलाउद्दीन को दुःख और निराशा के चक्र में डाल देता है। पूर्वार्द्ध में जहाँ सफल साधक का चित्र है, वहाँ उत्तरार्द्ध

मे अमफल साधक का । जा हो, यह निश्चित है कि जायसी का पद्मावत (१५४० ई०) हिंदी साहित्य की अमूल्य संपत्ति है । उसमें एक विशेष काव्य-धारा की सर्वोत्तम निधि सुरक्षित है, परन्तु साथ ही एक प्रमुख धार्मिक साधना का भी प्रकाशन उसके द्वारा हुआ है । जायसी सूरदास के समकालीन है । सूरदास की भक्ति उन्होंने भी प्रेम का प्रतीक लेकर एक अभिनव अध्यात्म-साधना का रूप खड़ा किया है । अखरावट और आखिरी कलाम (१५२६ ई०) में जायसी पर सूफी साधनाओं की अपेक्षा इस्लामी भावनाओं का ही प्रभाव अधिक है । अखरावट निःसंदेह कबीर और संतो द्वारा प्रतिष्ठित एक विशेष काव्य-शैली है जिसमें धार्मिक सिद्धांतों का निरूपण कवि का लक्ष्य होता है । वास्तव में 'आखिरी कलाम' कवि की पहली और अप्रोढ़ रचना है । यह २६-३० वर्ष के नवयुवक की रचना है जिसकी आँखों में इस्लाम के स्वप्न भूत रहे हैं । कवि-रूप से वह प्रसिद्ध भी हो गया है । कदाचित् उसने नागमती के विरह (पट्ट-ऋतुवणन) की भी रचना कर ली है और उसे मधुर स्वर में गा-गाकर लोगों को मुग्ध भी कर लिया है । बाद में इस मौलिक रचना को कवि ने 'पद्मावत' का एक अंग बना लिया । यह तरुण युवक 'दस दिन' का पाहुना बन कर, जायस पहुँचा, और न जाने किस कारण से वहाँ वैरागी बन बैठा । सभ्य है, कुछ समय बाद वह कालपी चला गया और वहाँ सैयद अशरफ जहाँगीर की सूफी गद्दी में उसने दीक्षा ले ली । कालपी के शेख ब्रह्मान मोहदी (मुहम्मदी) में कवि दीक्षित था । इन्हीं के यहाँ रहकर अपने पद्मावत (१५२६-४०) को रचना की जान पड़ती है । फिर भी जायस लौट आया और वहाँ उसने इस रचना को तात्पर्य दी । उस समय शेरशाह का शासन-काल था ।

पद्मावत

[१] कहानी

‘पद्मावत’ की कहानी का मूलाधार ऐतिहासिक है, परंतु जायसी ने इतिहास को दृष्टि में रखकर कथावृत्त का विस्तार नहीं किया। उन्होंने मसनवियों के अनुरूप इस विशेष कथा को सभ्यता का आधार-मात्र बनाया है। लोककथा को लेकर उसके लौकिक प्रेम पक्ष पर अलौकिक भवनाओं का आरोप करने की प्रवृत्ति प्रारंभ से ही सूफी मसनवियों में पाई जाती है और जायसी मूल रूप से इसी परंपरा से प्रभावित थे। पद्मावत की ऐतिहासिक घटना उसके उत्तरार्द्ध में वर्णित है। अलाउद्दीन किस प्रकार पद्मावती पर मुग्ध हुआ, कैसे उसने चित्तौड़ पर आक्रमण किया और अंत में ज़ार उमके हाथ लगा। इस सब कथा का संबंध १३०३ ई० के चित्तौड़ के आक्रमण से है। कुछ ही दिनों बाद पद्मिनी की कथा सारे देश में प्रसिद्ध हो गई। लोककथा के रूप में व्यापक रूप से उसका प्रचार हुआ और साहित्य में भी उसे आधार बनाया गया। संस्कृत और हिंदी दोनों में पद्मावति पर काव्य लिखे गये हैं, यह कथा की लोकप्रियता का प्रमाण है।

जायसी के पद्मावत की कहानी खंडों में बँटी हुई है। बड़े खंड कहानी की दृष्टि से किसी तरह महत्वपूर्ण नहीं है। सूफ़ी स्तुति खंड (१), सिंहलद्वीप-वर्णन खंड (२), नखशिख- (१०), षट्शतु-वर्णन खंड (२६), स्त्री-भेद-वर्णन खंड (५६)

बादशाह भोज खंड (४५) । इस प्रकार ६ खंडों का अध्ययन हम कथावस्तु से अलग भी कर सकते हैं । शेष ५१ खंडों में कथा का विस्तार मिलता है ।

कथा इस प्रकार है—

आरंभ में कवि सिंहलद्वीप का वर्णन करता है । गंधर्वसेन सिंहलद्वीप का राजा था । चम्पावती रानी । दोनों के एक संतान हुई । पद्मावती नाम रखा गया । यह अत्यंत सुन्दर थी । पढ़ने में दक्ष इतनी थी कि पाँच वर्ष की आयु में ही बहुत कुछ पढ़ गई । जब वह ग्यारह वर्ष की हुई तो सात खंड के एक महल में अलग रहने लगी । कुछ सखियाँ साथ रहीं । हीरामन नाम का एक तोता था । वह देश-विदेश घूमा था और बड़ा पंडित था । पद्मावती उसे बड़ा प्यार करती थी ।

बहुत बयस्क हो जाने पर भी जब वैभव के गर्विले राजा ने पद्मावती का व्याह नहीं किया, तो वह चिंतित रहने लगी । एक दिन हीरामन तोते से उसने अपने मन में व्यथा कही । उसने कहा—अब मैं तुम्हारे लिए वर खोज दूँगा । मुझे मुक्त कर दो । जब तक मैं नहीं लौटूँ तब तक धैर्य धरो । कोई दुर्जन इन बातों को सुन रहा था । उसने राजा को सूचना दी, राजा ने तोते को मारने की आज्ञा दी, परंतु बधिको के आने से पहले ही पद्मावती ने उसे छिपा दिया था । जब राजा के बधिक चले गये, तो हीरामन बाहर आया । उसने जाने का आग्रह किया । जब देश का स्वामी ही नाराज है, तो प्राण किस प्रकार बचेगे । धिक्वश होने पर भी पद्मावती ने आज्ञा नहीं दी (जन्म खंड) । किसी पूर्णिमा में पद्मावती सखियों के साथ मानसरोवर में स्नान करने गई । वहाँ सखियों ने खूब जलक्रीड़ा की । फिर सब भूला भूली । जलक्रीड़ा के समय एक सखी रत्नहार खो बैठी और विलाप करने लगी । परंतु कुछ देर बाद हार पानी में उतराने

लगा और सब सखियाँ प्रसन्न-प्रसन्न घर लौटी (मानसरोवर खंड) । जब पद्मावती सहेलियो के साथ जलक्रीड़ा में मग्न थी, हीरामन पिंजड़ा तोड़ कर उड़ गया । वह जंगल में स्वतंत्र पक्षियों के साथ रहने लगा । एक दिन एक बहेलिया ने उसे पकड़ लिया और माँबे में रख कर ले चला (सुआ खंड) ।

यह हुई मिहल की कथा ।

अब चित्तौड़ की ओर ।

चित्तौड़ में चित्रसेन राजा राज करता था । उसके रत्नसेन नाम का एक पुत्र था । ज्योतिषियों ने बताया था कि वह पद्मिनी से विवाह करेगा, सिंहलद्वीप जायेगा (रत्नसेन जन्म-खंड) राजा चित्रसेन की मृत्यु पर रत्नसेन चित्तौड़ के राजसिंहासन पर बैठा । एक दिन चित्तौड़ का एक बनिया व्यापार के लिए सिंहल पहुँचा । वहाँ उसने अनेक विचित्र वस्तुएँ खरीदीं । उनमें व्याध के हाथों खरीदा हीरामन तोता भी था । इन्हे वह चित्तौड़ लाया । इन विचित्र चीजों को लेकर वह रत्नसेन के पास उपस्थित हुआ । रत्नसेन ने हीरामन मौल ले लिया और वह रत्नसेन पहुँच गया (बनियारा खंड) । रत्नसेन की रानी नागमती ने एक दिन अपने रूप का गर्व करते हुए हीरामन से पूछा—संपार में मुझमें सुंदर स्त्री कौन है ? तोते ने उसे सिंहलद्वीप की राजकन्या पद्मावति की बात बताई । इसे सुनकर नागमती को यह आशंका हुई कि कहीं तोता रत्नसेन को भी यह बात न बता दे और उसे प्रिय-वियोग का दुःख उठाना पड़े । उसने तोते को एक वाय के सुपुर्द किया कि माग डाले । परंतु वाय जानती थी कि इस तोते से राजा को प्रेम है । उसने तोते को झिपा दिया । रात को जब राजा आया और उसने तोते के संबंध में पूछा तो नागमती ने बताया कि उसने इस अपराध पर उसे

मृत्युदंड दिया। राजा विलाप करने लगा। उसके क्रोध को देखकर धाय ने सच्चा बात बता दी और तोता रानी को लाकर दे दिया। रानी ने उसे राजा को दे दिया (नागमती-सुआ-संवाद)।

तोते ने राजा को सिंहलदेश की राजकुमारी पद्मावति के अपूर्व सौन्दर्य की बात सुनाई। राजा ने ज्यो हा ‘पद्मावति’ का नाम सुना, उसके मन में पूर्वरोग का संचार हो गया। उसने सुआ से पद्मावति का नखशिख पूछा (राजा-सुआ संवाद खंड)। अगले खंड में पद्मावति के नखशिख का वर्णन है। इस नखशिख को सुन कर राजा को मूर्च्छा आ गई और वह चेतनाहीन हो गया। जब वह जागा तो उसकी ‘त्राहि-त्राह’ से सारे कुटुम्बी-परिजन दुखित हो उठे। किसी की ममक में नहीं आता था कि क्या किया जाये। राजा रो रहा था और हीरामन भौंति-भौंति से उसे समझ रहा था। हीरामन ने कहा— राजा, सिंहल का मार्ग कठिन है। वहाँ भोगी नहीं जा सकता। तुम तो भोगी हो। जोगी-संन्यासी ही मार्ग पा सकते हैं। यह सुनते ही राजा में नए उत्साह का संचार हो गया और वह सिंहल-यात्रा पर निश्चित हो गया (प्रेमखंड)। राजा राज्य छोड़ कर जोगी हो गया। जोगियों के चिन्ह मेखला, सिंधी, चक्र इत्यादि उसने धारण कर लिये। ज्योतिपियों की अवहेलना करके भी वह यात्रा को चल पड़ा। सारा चित्तौड़ बिरह में उमड़ पड़ा। माँ ने अनेक प्रकार से विनती की, परंतु राजा ने नहीं माना। नागमती के दुःख का कहना ही क्या। वह भी सीता की तरह साथ जाना चाहती थी, परंतु रत्नसेन ने उसे पथ की कठिनाइयों बताईं और साथ ले चलना स्वीकार नहीं किया (जोगी खंड)।

राजा के साथ सौलह सौ कुँवर थे। आगे-आगे हीरामन

तोता। लगभग एक महीने चलकर वे लोग समुद्र के किनारे पहुँचे। वहाँ के राजा गजपति ने भेट की और राजा को समझाना चाहा, परंतु राजा माना नहीं। इस पर राजा गजपति ने बोहितो (जहाजो) का इन्तजाम कर दिया (राजा गजपति संवाद खंड)। जब वे जहाज चले तो सारा समुद्र पट गया और वे अत्यंत तीव्रता से सिंहल की ओर बढ़ने लगे (बोहित खंड)। मार्ग में इन लोगों को सात समुद्र पार करना पड़े। अतः वे मानसर के किनारे सिंहल द्वीप में लगे (सात समुद्र खंड)। सिंहलद्वीप पहुँचकर राजा को तोते ने सिंहलगढ़ दिखाया। 'यहाँ पद्मावति रहती है, परंतु उसके पास जाना संभव नहीं है।' उसने इंगित द्वारा दूर पर स्थित सुमेरु पर्वत को दिखाते हुए कहा—'इस पर्वत पर महादेव का मंडप है। माघ मास की श्री पंचमी को वहाँ पर महादेव की पूजा करने के लिए पद्मावती आयेगी। वही तुम उसके दर्शन पा सकोगे।' राजा ने इसे स्वीकार किया और हीरामन पद्मावती के पास चला गया (सिंहलद्वीप खण्ड)। उधर राजा वियोग में पागल तीस हजार चेलों के साथ महादेव के मंडप में रहने लगा और पद्मावति के लिए विरह को साधना उसका जीवन-तप बन गई (मंडप गमन खंड)।

राजा के योग का प्रभाव अलक्षित रूप से पद्मावति पर भी हुआ और वह अपनी धाय से अपनी वियोग-कथा की बात कहने लगी। रात उससे काटे नहीं कटती (पद्मावति-वियोग खण्ड)। हीरामन पहुँचा। पद्मावती जैसे जी गई। उसने उसे गले से लगा लिया। हीरामन ने सारी कथा सुनाई। इस कथा को सुनकर रानी के मन में अभिमान का संचार हुआ। परंतु जब हीरामन ने राजा की कृशता की बात कही, तब रानी के मन में दया उत्पन्न हुई। उसने हीरामन से कहा—'यह जोगी

मर गया तो हत्या मुझे लगेगी । अब मैं बसंत पूजा के बहाने उसे दर्शन दूँगा ।’ यह सुन कर हीरामन प्रसन्न-प्रसन्न राजा (जोगी) रत्नसेन के पास चला गया (पद्मावती-सुभ्रा-खण्ड) ।

बसंत की श्री पचमी को पद्मावती महादेव के मंदिर में आई । पूजा करने के बाद उसने इष्टदेव से मन-चाहे वर की इच्छा प्रगट की । इस समय एक सखी हँस कर बोली—रानी, पूर्व द्वार पर कुछ जोगी आये हैं । उनमें से एक तो राजकुमार जैसा लगता है । पद्मावती उसे देखने गई । उसे देखते ही राजा बेहोश हो गया । पद्मावती ने उसके शरीर पर चंदन लगाया । क्षण भर राजा जागा, परंतु फिर ठडक पाकर गहरी नींद सो गया । तब पद्मावती ने चंदन से उसके हृदय पर यह अंकित कर दिया—जोगी, तूने भीख लेना नहीं सीखा है । जब घड़ी आई, तब तू सो गया । तू अभाग है ।’ पद्मावती लौट कर सोई तो स्वप्न में उसने हनुमान द्वारा लंका लूटने वाला दृश्य देखा । साकेतिक रूप से उसने प्रियमिलन की बात पूर्व ही जान ली । सखियों ने भी इस स्वप्न का यही अर्थ लगाया कि उसे मनोवांछित वर प्राप्त होने वाला है (बसंत खंड) ।

पद्मावती चली गई तो रत्नसेन जागा । वह घोर विलाप करने लगा । अंत में उसने चिता पर जल रहने का निश्चय किया (रत्नसेन-सती खंड) । रत्नसेन चिता सजा रहा था कि महादेव और पार्वती आ पहुँचे । राजा ने कारण पूछने पर उन्हें सारी कथा बताई । इस पर पार्वती अप्सरा के समान रूप धारण कर बोली—मुझे इंद्र ने भेजा है । मैं अप्सरा हूँ । पद्मावति मुझ जैसी सुन्दरी तो नहीं होगी । तुम मुझे ग्रहण करो । रत्नसेन ने कहा—मेरी आँखों के आगे तो पद्मावती है । मैं तो उसी से प्रेम करता हूँ । वह भयंकर रूप से रोने लगा ।

अंत में महादेवजी ने अपना वास्तविक रूप प्रगट किया और उसे गढ़ जीतने का उद्देश्य दिया और मार्ग भी बताया (पार्वती महेश खंड)। यह सिद्धि-गुटका था। इसे पाकर राजा इकेला ही महल में घुमा पड़ा। उसने नौरंगों से यह कहला दिया कि मैं पद्मावती का भिखारा हूँ। उन लिये बिना नहीं जाऊँगा। यह संदेश भेज कर राजा के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा उसने हीरामन के हाथ एक पत्र पद्मावती के पास भेजा। पद्मावती का उत्तर आया। राजा प्रसन्नता से भर गया (राजा गढ़-छेका खंड)।

मंत्रियों से सलाह लेकर राजा गंधर्वसेन ने रतनसेन को बंदी बना लिया। इस समाचार को पाकर पद्मिनी बहुत दुखी हुई। हीरामन ने जब उसे आवाज़ दी तब वह होश में आई (गंधर्वसेन-मंत्री खंड)। बंदी रतनसेन को सूली की सजा मिली। बात यह हुई कि उसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया और उसकी विरह-वेदना से आकर्षित हो महादेव-पार्वती को भी वहाँ आना पड़ा। महादेवजी ने राजा को रतनसेन का यथार्थ परिचय दिया। हीरामन ने भी साक्षी दी। विवाह का निश्चय हुआ और रतनसेन का तिलक हो गया। ठीक लग्न पर बरात सज कर चली। बरात आती देख भावावेश में पद्मावति मूर्च्छित हो गई। सखियों द्वारा होश में आई हुई पद्मावति महल के सातवे खण्ड पर पहुँचाई गई। वही सुहागरात का आयोजन था (रतनसेन-सूली खण्ड)। इस सातवे खण्ड पर पद्मावति और रतनसेन की पहली भेट हुई। पहले तो पद्मावति को बड़ा संकोच हुआ, परंतु फिर संकोच दूर हो गया और दोनों सुखपूर्वक क्रीड़ा करने लगे (पद्मावति रतनसेन खण्ड)। दूसरे दिन सौलह हज़ार साथियों का विवाह सिंहाल की सुन्दर 'पद्मिनी' स्त्रियों से हो गया।

(रतनसेन साथी खण्ड) । छहों ऋतुएँ दम्पति ने बड़े मूख से बिताई (पट्ऋतु-वर्णन खण्ड) ।

यह हुई सिंहल की कथा ।

अब कवि चित्तोऽ मे वियोगिनी नागमती के पास आता है । नागमती के वियोग और उसके संदेश को कवि ने दो खंडो में कहा है । यह दो ‘पद्मावत’ के तीस-इकतीस खंड साहित्य की दृष्टि से बड़े महत्वपूर्ण है । नागमती का संदेश लेकर पत्नी सिंहल पहुँचा । सिंहल में पहुँचते ही आग लग गई । रतनसेन बन में आखेट के लिये आया था । वह एक पेड़ के नीचे बैठा हुआ था । उसने सुना ऊपर बैठे पत्नी किसी नवागंतुरु से बातें कर रहे हैं । इस पत्नी ने अपना परिचय दिया और नागमती के वियोग की कथा सब को सुनाई । राजा नीचे बैठा हुआ सब सुन रहा था । उसने पंखी स सारी बात फिर पूछी । पंखी कहानी सुना कर उड़ कर चला गया, रतनसेन चिल्लाता रहा, परंतु वह लौटा नहीं । रतनसेन लौट कर उदास रहने लगा । चित्तौड़ की याद उसे सताने लगी । महाराज रतनसेन का इस उदासी को बात सिंहलपति गधर्वसेन को भी मिली (नागमती संदेश खंड) । रतनसेन ने विदा चाही । अंत में शुभमुहूर्त में वह बहुत धनधान्य के साथ पद्मावती को लेकर चला (रतनसेन विदाई खण्ड) ।

परंतु इस यात्रा में भी अनेक बाधाएँ आईं । जहाज अपना मार्ग भूल गया । वहाँ एक मछुवे के भेस में कोई राक्षस नाव पर शिकार कर रहा था । राजा ने उससे राह पूछी । परंतु वह उसे अतल जल में ले गया और वहाँ जहाज डूब गया (देश यात्रा-खंड) । राजा और पद्मावती अलग-अलग हो गये । बहते-बहते पद्मावती समुद्र तट पर लगी । वहाँ समुद्र की पुत्री लक्ष्मी खेल रही थी । लक्ष्मी ने उसे अपने पितागृह ही रखा । परंतु जब

रतनसेन वहाँ आ लगा तो लक्ष्मी ने अपने को पद्मावति बता कर उसे छलना चाहा । परंतु रतनसेन ने पहचान लिया । तब लक्ष्मी उसे पद्मावति के पास ले गई । प्रेमी-प्रेमी मिले । उन्होंने चित्तौड़गढ़ की ओर प्रस्थान किया (लक्ष्मी-समुद्र खंड) ।

चित्तौड़ में घर घर उत्सव हुए । नागमती भी बड़ी प्रसन्न । परंतु बाद में वह पद्मावति के प्रति ईर्ष्या से जलने लगी (चित्तौड़ आगमन खंड) । एक दिन दोनों रानियों में काफी संघर्ष हुआ और रतनसेन को बीच में पड़कर उन्हें संतुष्ट करना पड़ा (नागमती-पद्मिनी विवाद खण्ड) अंत में नागमती ने नागसेन और पद्मावती के पद्मसेन नाम के पुत्र जनमे (रतनसेन सतति खंड) ।

यहाँ तक पूर्वार्द्ध की कथा चलती है । इसके बाद उत्तरार्द्ध की कथा चलती है जिसका आधार इतिहास है ।

चित्तौड़ के कागवार में राघवचेतन नाम का एक बड़ा पंडित था जिसे यज्ञिणी सिद्ध थी । एक दिन किसी बात पर वाद-विवाद हो गया और राजा रतनसेन उसे देश निकाले की आज्ञा दी । पद्मावति ने सुना तो उसे अच्छा नहीं लगा । पांडित्य और ज्योतिष के लिये पंडित राघवचेतन की बड़ी प्रतिष्ठा थी और उसके बाहर जाने से उसकी ओर देखा और मुस्करा कर एक कंगन उतार कर उसकी ओर फेंका । राघवचेतन पद्मावती को देखकर मूर्च्छित हो गया और सखियाँ उसे होश में लाईं (राघवचेतन देशनिकाला खंड) । राघवचेतन दिल्ली गया । उसने अलाउद्दीन से पद्मावती के सौन्दर्य की चर्चा की । बाद-शाह अपनी चेतना खो बैठा । जब स्वस्थ हुआ तो उसने राघवचेतन को एक पत्र देकर चित्तौड़ भेजा । पत्र में पद्मावति को दिल्ली भेजने को कहा था (राघवचेतन दिल्ली गमन खंड, संगी-भेद वर्णन खंड, पद्मावती रूप-चर्चा खंड) । जब रतनसेन

ने यह पत्र पढ़ा तो उसे अपार क्रोध आया। उसने दूत को लौटा दिया। अलाउद्दीन युद्ध की तैयारी करके चित्तौड़ की ओर बढ़ा (बादशाह चढ़ाई खंड)। कई वर्षों तक युद्ध चलता है। तभी दिल्ली पर हमले के समाचार आये और वह संधि करके दिल्ली लौट गया (युद्धखंड)। अलाउद्दीन ने रतनसेन के पास दूत भेज कर वह पांच रत्न माँगे जा समुद्र ने उसे दिये थे। चंदेरी का राज्य उसने चित्तौड़ को दिया। इस प्रकार उभय पक्षों में संधि हो गई (मेल खंड)। दुर्ग में बादशाह की दावत हुई। उसी दिन शतरंज खेलते वक्त दर्पण में बादशाह ने पद्मावती की प्रतिच्छवि देखी और उसकी वासना फिर जाग उठी। वह चेतनाहीन हो गया (बादशाह-भोजखंड, चित्तौड़गढ़ वर्णन खंड)। जब रतनसेन बादशाह को पहुँचाने दुर्ग के बाहर गया तो उसके आर्दमियों ने छल से उसे बंदी बना लिया (रतनसेन बंधन खंड)। पद्मावती और नागमती को फिर विरह दुःख भोगना पड़ा (विलाप खंड)। उधर कुम्भलनेर के राजा देवपाल ने पद्मावती को फुसलाने के लिये दूती भेजी। बादशाह अलाउद्दीन ने भी एक वेश्या को दूती बनाकर भेजा (देवपाल दूती खंड, बादशाह दूती खंड)। पद्मावती ने अब इन चालों का सामना करना चाहा। उसने गौरा-बादल नाम के अपन दो सरदारों से अपनी व्यथा कही। उन्होंने रतनसेन को छुड़ा लाने का वचन दिया (पद्मावती-गौरा-बादल संवाद)। बादल का अभी गौना हुआ था। माँ और पत्नी न रोकना चाहा, परंतु वह रुका नहीं। वह युद्ध के लिए चल दिया (गौरा-बादल युद्ध-यात्रा खंड)। बारह सौ पालकियों में हथियारबद्ध सैनिक चले। पद्मावती वाली पालकी में लोहार बिठाया गया। यह प्रसिद्ध किया गया कि पद्मावती अलाउद्दीन के पास जा रही है। वे दिल्ली

पहुँचे। अलाउद्दीन की आज्ञा लेकर चित्तौड़गढ़ की चाभी देन के बहाने पद्मावती का डोला रतनसेन के शिविर में पहुँचा। रतनसेन मुक्त हो गया और बादल उसे लेकर चित्तौड़ की ओर भागा। इस युद्ध में गौरा वीरगति को प्राप्त हुआ (गौरा-बादल युद्ध खंड)। जब चित्तौड़ में आकर रतनसेन पद्मावती से मिला तो उसने देवपाल की बात कहा। देवपाल और रतनसेन में युद्ध (द्वन्द्व) हुआ और रतनसेन मार डाला गया (रतनसेन-देवपाल युद्ध-खंड)। रतनसेन की मृत्यु पर गढ़ की रक्षा बादल के हाथ में दे दी गई। पद्मावती और नागमती राजा के साथ सती हो गई। उसी समय अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया, परंतु उसके हाथ केवल चार ही पड़ी (राजा रतनसेन वैकुण्ठ वास खण्ड और पद्मावती—नागमती सती खंड)।

इस प्रकार पद्मावत की कथा समाप्त हुई। 'पद्मावत' (१५४०) की इस कथा वस्तु के विश्लेषण करने की आवश्यकता है। इससे हमें कई बातों का पता चलता है। पहली बात तो यह है कि कथा का पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भागों में बाँटा जा सकता है। उत्तरार्द्ध में ऐतिहासिक कथा का ही लोकोप्रसिद्ध रूप है। टाड के राजस्थान से कई बातों में यह कथा साम्य रखती है। यह स्पष्ट है कि जिस रूप में अलाउद्दीन-पद्मावती की कथा पद्मावत में सुरक्षित है उस रूप में वह लोकोप्रसिद्धि प्राप्त कर चुका थी। थोड़े-थोड़े भेदों के साथ वह सारे भारत में फैली थी। नहीं तो उसका यही रूप अबकी कथा-कव्य में नहीं मिलता। दूसरी बात यह है कि इसके कई पात्र स्पष्ट रूप से ऐतिहासिक हैं। पद्मावति, राजा, अलाउद्दीन और गौरा-बादल। राघवचैतन्य मालिक पात्र है और शैतान के रूप में उसकी कल्पना की गई है। शैतान मालिक को मुआरफ़

के साथ देखना नहीं चाहता। वह उमे हटाने के लिए प्राणपण से चेष्टा करता है।

पूर्वाद्ध की कथा उत्तराद्ध की कथा से भिन्न है। उसका विस्तार भी बहुत अधिक है। ग्रंथ का बहुत बड़ा भाग पूर्वाद्ध पर समाप्त हो जाता है। संभव है, जायसी पहले पूर्वाद्ध की कथा को ही लेकर चले हों और उत्तराद्ध उनकी बाद की सुरू हो।

परन्तु पूर्वाद्ध के अनेक भाग ऐसे हैं जिनका विस्तार कथा की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण नहीं है। उदाहरण के लिए ‘पार्वती महेश खंड’ में महादेव रतनसेन को समझाते हैं—
रोओ मत। यह सिंहलगढ़ वैसा ही है जैसा तुम्हारा देह। दसवे द्वार तक यहाँ भी चढ़ना पड़ेगा। उसे (पद्मावती) को वही देख पाता है जो अपनी दृष्टि को उलट कर लगाता है। वही उसे देख पाता है और वही जाकर उसे प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार के वक्तव्य का उद्देश्य स्पष्ट रूप से उभय पक्षिक है। वह कथा-वस्तु की दृष्टि से सिंहलगढ़ पर सार्थक होते हैं, परन्तु अध्यात्म की दृष्टि से उनमें कायास्थित ब्रह्म की साधना का व्यौरा मिलता है।

यह हुई पद्मावत की कथा वस्तु।

(२) ऐतिहासिकता

इस कथावस्तु में ऐतिहासिकता कहीं तक है इस पर विचार करना उचित होगा। परन्तु इसके पहले ज़रा कथा का विश्लेषण कर लें।

{ कथा के केन्द्र तीन हैं—नागमती, पद्मावती और अलाउद्दीन। सिंधल, चित्तौड़ और दिल्ली। नागमती चित्तौड़ के राजा रत्नसिंह की बिवाहिता है। पद्मावती पहले रत्नसिंह की प्रेयसी

है फिर विवाहिता। अलाउद्दीन भी पद्मावती का प्रेमी है परन्तु उसका प्रेम वासनात्मक है और उसने प्रेम की साधना के मार्ग को न पकड़ तलवार और छल के मार्ग को पकड़ा है। इसीलिए पद्मावती उसके हाथ नहीं आती। उसके हाथ चार आती है।)

सिंघल, चित्तौड़ और दिल्ली तीनों ऐतिहासिक प्रदेश हैं। सिंघलद्वीप को जायसी नगर के रूप में चित्रित करता है। स्पष्ट है कि आधुनिक सिंघल (लंका) से उसका विशेष परिचय नहीं था। सुनी-सुनाई बातों के आधार पर वह सिंघल का चित्रण कर रहा था। चित्तौड़ से रत्नसिंह ने सिंघल की जो यात्रा की है, उससे जान पड़ता है कि जायसी बंबई के आसपास कहीं सिंघलद्वीप होना मानते हैं और जब लौट कर राजा आता है तो वह बंगाल-समुद्र से होकर। वह जगन्नाथपुरी पहुँचता है। इससे स्पष्ट है कि कवि सिंघल को भारत के ध्रुवदक्षिण में मानता था। उसे जगन्नाथपुरी से सिंघल तक के जलमार्ग का भी पता था। प्राचीन कथा-कहानियों में यह जल-मार्ग प्रसिद्ध रहा है। चित्तौड़ और दिल्ली आधुनिक चित्तौड़ और दिल्ली ही हैं।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अध्ययन करने पर पता चलता है कि १३०३ ई० में अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ का घेरा किया और उस पर अपना अधिकार जमा लिया। चित्तौड़ाधिपति लक्ष्मणसिंह कुछ सैनिकों के साथ चित्तौड़ छोड़ कर दक्षिण चले जाते हैं और पद्मिनी रनिवास के साथ जोहरब्रत धारण कर सती हो जाती है। ऐतिहासिक तथ्य केवल इतना है। परन्तु भारतीय वाङ्मय में पद्मिनी और अलाउद्दीन के लेकर एक कहानी ही खड़ी कर ली गई है। जायसी के समय

वह कहानी अवश्य उसी रूप में प्रसिद्धि पा रही होगी जिस रूप में उन्होंने उसे ग्रहण किया है। अलाउद्दीन पद्मिनी के रूप की प्रशंसा सुन कर उस पर मोहित हो जाता है और आक्रमण करता है। परन्तु सफल न होकर संधि कर लेता है। अंत पुर के दर्पण में पद्मिनी की भाँई देखकर वह व्याकुल हो जाता है और जब चित्तौड़पति उसे पहुँचाने बाहर जाता है तो छल से उसे पकड़ लेता है। पद्मिनी भी छल से काम लेती है। वह कहला देती है कि वह डोलो के साथ आ रही है और गोरामादल के साथ बंदी-शिविर में पहुँच कर पति को मुक्त करती है। एक वर्ष बाद अलाउद्दीन फिर आक्रमण करता है और इस बार सफल होता है। पद्मिनी सती हो जाती है।

यह तो जायसी की 'उत्तर कथा'। इसमें भी जायसी ने कई चीजें अपनी ओर से जोड़ दी हैं। राघवचैतन और कुम्भलनेर का राजा देवपाल जायसी की अपनी सूझ है। कुम्भ का समय अलाउद्दीन से बहुत पहले है। अतः अलाउद्दीन के समय कुम्भलनेर का अस्तित्व भी नहीं था। फिर वहाँ के राजा की बात ही कैसे उठती। देवपाल कहानियों में प्रसिद्ध नाम है। इसी से जायसी ने इसे अपना लिया। चित्तौड़पति (रत्नसेन) को अलाउद्दीन के हाथ से न मरवा कर कवि ने मर्यादा की ही रक्षा की है। रत्नसेन को हराने के लिए ही देवपाल की सृष्टि हुई जान पड़ती है।

परन्तु जायसी की 'पूर्वकथा' की ऐतिहासिकता एकदम अनिश्चित है। उसमें जो है वह सब कल्पित है। चित्तौड़ का कोई राजा सिंहलद्वीप तक दौड़ेगा, इसकी कल्पना भी संभव नहीं। फिर चित्रसेन, गंधर्वसेन और रत्नसेन एवं नागमती सब कल्पित नाम सिद्ध होते हैं। इनका अलाउद्दीन-पद्मावत की कहानी

से कोई सम्बन्ध नहीं। पद्मिनी के पति का नाम लक्ष्मणसिंह मिलता है, रतनसिंह नहीं। संभव है, राणा सांगा (मृ० १५२७) के उत्तराधिकारी महाराणा रतनसिंह (१४६१-१५३१) के नाम पर ही जायसी को 'रतनसेन' नाम को प्रेरण मिली हो। महाराणा रतनसिंह बूंदी के हाड़ा सूरजमल के साथ आर्ती हुई पारस्परिक अनबन के कारण उन्हीं के हाथों किसी शिकार के समय मार डाले गये और कदाचित् यह वृत्त ही नये रूप में 'पद्मावत' के 'रतनसेन' के साथ जोड़ दिया गया। इस प्रकार इतिहास के सूरजमल कल्पना के देवपाल हो गए। सन् १५३२ ई० में गुजरात के बादशाह ने मेवाड़ पर चढ़ाई की और कुछ समय तक युद्ध होने के उपरांत संधि हो गई। किन्तु सन् १५३४ में ही उसने फिर दूसरा आक्रमण किया। चित्तौड़ पर बादशाह का अधिकार हो गया और रानियों ने जोहर कर लिया।

संभव है जायसी का चित्रसेन महाभारत का गधर्वराज चित्रसेन हो और गधर्वसेन बन गया हो। यह निश्चित है कि जायसी के काव्य-काल (१५२०-४०) में चित्तौड़ की प्रसिद्धि विशेष रही होगी। १५२७ में राणा सांगा ने साकरी के युद्ध में राजपूतों का नेतृत्व किया था और उस युद्ध में बाबर को अत्यंत साहस से ही विजय प्राप्त हो सकी थी। बाबर के बाद ही लगभग ५० वर्ष तक चित्तौड़ बराबर मुसलमानों से मोर्चा लेता रहा। इसी से उस समय की जनता (विशेषकर हिंदू जनता) के लिए 'चित्तौड़' की कथाओं में विशेष आकर्षण रहा होगा। संभव है, तत्कालीन राजनीति की घटनाओं के आधार पर लोक-कथाओं में अलाउद्दीन पद्मिनी की कहानी का पुनर्निर्माण हुआ हो और जायसी को यह नई कहानी ही हाथ लगी हो।

परंतु पूर्वकथा का आधार एकदम अनैतिहासिक है।

संभव है, नागमती ‘बीसलदेव रासो’ की राजमती का पुनः-संस्करण हो, परंतु नागमती का कोई ऐतिहासिक आधार है, इस संबंध में संदेह है। १४५६ ई० के दामो की लक्ष्मणसेन-पद्मावती की कहानी और लालसेन की पद्मिनी चरित में भी यही पूर्वकथा कुछ हेर-फेर के साथ संग्रहीत है। लालचंद की रचना में नागमती का स्थान प्रभावती ले लेती है। जो हो, पद्मावती की सपत्नी के संबंध में इतिहास मौन है। फिर भी कथाओं में तो सौत चल ही रही है और यदि जायसी ने इसका आधार लेकर एक उत्कृष्ट विरह-काव्य की रचना की तो उन्हें श्रेय मिलना ही चाहिये।

जान पड़ता है, सिंहल और पद्मिनी स्त्रियों का सम्बन्ध बहुत प्राचीन काल से चला आता था। योगियों में इनकी प्रसिद्धि थी। कथा है, कि मत्स्येन्द्रनाथ सिंहल में पद्मिनी सुन्दरियों के मोह में फँस गये थे और गोरखनाथ ने उनका उद्धार किया। ‘कामरूप’ और ‘सिंहल’ जोगियों के लिए सिद्धि में बाधक माने गये हैं। नाथ-साहित्य में ‘कामरूप’ और ‘सिंहल’ की सुन्दरियों की बार-बार चर्चा है। जायसी ने काया-गढ़ के रूप में सिंहल का जो वर्णन किया है और गढ़-छेका खण्ड में सिंहल-विजय की कठिनाइयों का जैसा चित्रण किया है, उससे यह स्पष्ट है कि वह नाथों (जोगियों) की कथा-परंपरा से प्रभावित है। ‘पद्मावत’ में जोग की शब्दावली और साधना का परिचय इस बात के प्रमाण है। नाम-साम्य के कारण इतिहास की ‘पद्मिनी’ का सामान्य ‘पद्मिनी’ नारी से सम्बन्ध जोड़ दिया गया और चित्तौड़ की रानी को सिंहल में जन्म लेना पड़ा। पद्मिनी-प्राप्ति की साधना ईश्वर-प्राप्ति की साधना का प्रतीक बन गई। जायसी ने अपनी पूर्वकथा में विस्तृत रूप से आध्यात्मिक रूपक का आरोप किया है। और वह रूपक

प्रत्येक प्रकार उसकी आध्यात्मिक साधना को स्पष्ट कर सकता है। आगे हम उस पर विचार करेंगे। तोते द्वारा पूर्वराग के जन्म की बात भी अनेक लोककथाओं में मिलती है। अतः पूर्वकथा में लोककथा और जोगी-कथा का अद्भुत संगम है और अज्ञातरूप से अध्यात्म-तत्त्व का आरोप अन्तःसलिला सरस्वती के रूप में उपस्थित है। इस प्रकार जायसी की कथा के तीन अंग हैं:

१—नागमती की विरह-कथा (लौकिक विरह-कथा जिसमें षट्ऋतु की याचना है। वीसलदेव रासौ में इस प्रकार की कथा का एक साहित्यिक रूप संग्रहीत है।)

२—रत्नसेन-पद्मिनी की कथा (लोक-कथा, जोगियों में प्रसिद्ध कथा और रूपक की त्रिवेणी)

३—उत्तर कथा [ऐतिहासिक कथा]। जायसी ने इस उत्तर कथा पर ही स्पष्ट रूप से आध्यात्मिक रूपक का आरोप करना चाहा है।

(३) कथा-संठगन

परंतु ये तीन कथाएँ एकदम स्वतंत्र नहीं हैं। जायसी ने विशेष चातुर्य से तीनों कथाओं का गठबंधन कर दिया है। कम से कम पूर्वकथा और उत्तरकथा के रूप में कथा के दो विभाजन तो संभव हैं ही। पहली कथा का फलागम पद्मावति की प्राप्ति है। रत्नसेन-संतति खंड (३७) में पूर्वकथा समाप्त हो जाती

१ डॉ० कमल कुलश्रेष्ठ ने अपनी पुस्तक 'मलिक मुहम्मद जायसी' में जायसी से पहले के एक संस्कृत काव्य का उल्लेख किया है जो पाठक राजवल्लभ की रचना है और जिसका समय १४१० ई० है अर्थात् घटना से सौ वर्ष बाद। इसमें नायक का नाम रत्नसेन ही है। यदि इस रचना का विशेष रूप से अध्ययन हो जाय तो पद्मावत की बहुत कुछ उलझने हल हो सकती हैं।

है और नई कथा का आरंभ होता है। राघवचेतन दूसरी कथा का नायक है। उसे खलनायक भी कह सकते हैं। उसी ने अलाउद्दीन को बहकाया और चित्तौड़ की ओर उसका मुँह फेरा। राघवचेतन को ही एक प्रकार इस कथा का सूत्रधार कहा जा सकता है। राजा रतनसेन ने उसका अपमान किया। उसमें चिढ़कर राघवचेतन दिल्ली चला गया और उसने रतनसेन को नई उलफनो में डाल दिया। परोक्ष रूप से चित्तौड़ की दुखांत परिणिति का कारण वही हुआ। इस कथा में ऐतिहासिकता की मात्रा इतनी अधिक थी कि आध्यात्मिक रूपक का आरोप भली भाँति नहीं हो पाया है।

(कथा-संगठन की दृष्टि से दोनों कथाएँ पुष्ट हैं। यह जायसी के लिए श्रेय की ही बात होगी। हिंदी कथा-साहित्य की अधिकांश कथाएँ विशृङ्खल हैं, परंतु जायसी के पद्मावत के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध की दोनों कथाएँ पंचसंधियों पर पूरी उतरती हैं। इस सौष्ठव के कारण कथा में और भी चमत्कार आ जाता है। ‘ममनवी’-काव्यों में कथाएँ बराबर पुष्ट मिलती हैं। इसका कारण यह है कि लेखक प्रसिद्ध लोक-कथाओं को लेता है और लोक-कथाएँ युग-युग से चलती आने के कारण प्रत्येक अंग में पुष्ट होती हैं। कल्पना का रंग चढ़ा कर कवि उन्हें और भी संगठित कर लेता है। जो हा, इसमें सन्देह नहीं कि जायसी की कथावस्तु अत्यंत रोचक है और वह भली भाँति संगठित हो सकी है।)

परंतु यह तो कहना ही पड़ेगा कि जायसी में इतनी प्रतिभा नहीं थी कि वह लोक और इतिहास में चलती हुई रतनसेन, पद्मावती और अलाउद्दीन संबंधी दोनों कथाओं को एक केन्द्र पर ले आते। यदि वह ऐसा कर लेते तो कला की दृष्टि से यह

रचना और भी पुष्ट हातो ! (जिस प्रकार कथा उपलब्ध है उस प्रकार पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध को बाँधने वाले किसी सूत्र का पता नहीं चलता। पूर्वार्द्ध में न राघवचेतन का पता है, न अलाउद्दीन। इस प्रकार न राघवचेतन ही इस सारी कथा को बाँध सका, न अलाउद्दीन। केवल पद्मावती और रतनसेन ही दोनों कथाओं को जोड़ते हैं। यदि कवि पद्मावती को सिंहल की राजकन्या नहीं बनाता, यदि वह मारवाड़ या गुजरात की ही कोई कुमारी बनाई जाती, तो राघवचेतन अथवा अलाउद्दीन का संबंध उससे जोड़ा जा सकता था। यदि राघवचेतन या अलाउद्दीन रतनसेन के प्रतिद्वन्दी नायक के रूप में खड़े हो सकते तो इस समस्या का हल निश्चित था।)

(हो सकता है स्वयं जायसी ने इस सारी कथा को एक बार नहीं लिखा हो और इस प्रकार उसमें विशृंखलता का समावेश हो गया है) कम-से-कम 'नागमती का विरह' (षट्छतु) और 'नखशिख' तो स्वतन्त्र रचनाएँ ही हैं जो 'पद्मावत' का अंग बना दी गई हैं। संभव है, 'नागमती के विरह-वर्णन' की लोकप्रियता से प्रभावित होकर जायसी को यह प्रेरणा हुई है कि किसी लोक-प्रसिद्ध जनकथा से इसका संबंध जोड़ा जाये और एक महत्वपूर्ण सामयिक घटना से उन्हें यह जनकथा प्राप्त हो गई। यह घटना १५२६ ई० का गुजरात के बादशाह बहादुरशाह का चित्तौड़ पर आक्रमण था। एक वर्ष पहले बहादुरशाह असफल हुआ था परन्तु इस वर्ष वह सफल हुआ। कदाचित्त बहादुरशाह की यही सफलता-असफलता की कथाएँ पश्चिमी (पद्मावत) की कहानी से जुड़ गईं और जायसी ने इसी जन-प्रसिद्ध रूप में उन्हें ग्रहण किया। जायसी को रतनसेन (रत्नसिंह) नाम भी इस घटना से प्राप्त हो गया। अतः पद्मावत का काल स्पष्टतः १५२६-४० है। यही जायसी

का साधना-काल है। जान पड़ता है, उन्होंने यह साग समय कालपी में बिताया जो इन दिनों एक प्रसिद्ध सूफी (चिश्ती) परम्परा का केन्द्र था। जायस के प्रति कवि को जो मोह है उससे यह निश्चित है कि उसका अधिकांश जीवन यही बीता।

(४) रूपक का आरोप

जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, पद्मावत की कथा फारसी मसनवी-शैली पर लिखी गई है। सारा कथा एक अत्यन्त प्रवहमान गति से बढ़ रही है। कदाचित् जायसी ने उसके खंड नहीं किये हैं। बाद में विषयानुरूप लोगों ने उसके खंड कर लिये। यदि जायसी सर्गों के ढंग पर खंडों की कल्पना करता तो ये संख्या में कम होते और इनके आकार में इतनी विभिन्नता नहीं होती। किसी भी मसनवी में सर्ग के ढंग पर कथावस्तु का विभाजन नहीं किया गया है। हाँ, स्थान-स्थान पर गद्य में कथा का विषय बताया जाता रहता है।

पद्मावत की कथा लौकिक है। नायक के महान् प्रयत्न ने उसमें प्राण डाल दिये हैं। पद्मावति और रत्नसेन के बीच में प्रारंभ में कोई भी खलनायक नहीं है। जो बाधाएँ हैं, वह केवल बाह्य हैं, प्राकृतिक हैं। उन्हें पार कर लेने पर पद्मावति की प्राप्ति हो जाती है परन्तु उन्हें पार करना हँसी खेल नहीं है। लक्ष्य-प्राप्ति की कठनाइयाँ ही सूफी-साधनापथ की गहनत की प्रतीक हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि सारी कथा ही रूपक है। (इस्लामी साहित्य में लैला मजनून, शीरी-करहाद और यूसुफ-जलैखा जैसी लौकिक प्रेम की कथाएँ सूफियों ने पारलौकिक प्रेम की व्यञ्जना के रूप में ग्रहण कर ली थीं) इन अनेक मसनवियों लिखी गईं। मसनवी-भर में कवि रंतु भी पारलौकिकता का जरा भी इशारा नहीं देता। वश्यकता

कथा को अत्यंत भावुकता से आगे बढ़ाता है और प्रेम और विरह के संबन्ध में मार्मिक उक्तियाँ कहता जाता है। स्थल-स्थल पर कवि-कथन के रूप में जो आ जाता है, वह अत्यंत महत्वपूर्ण है। सूफी-साधक के लिए वही मनन और साधना की वस्तु है।

इस प्रकार हम देखते हैं, पद्मावत का पूर्वाङ्ग उत्कृष्ट रूपक है। जायसी ने मन की साधना को ही कथा का रूप दिया है। कथा उन्हें गढ़नी नहीं पड़ी, गढ़ी-गढ़ाई कथा उन्हें मिल गई, यह दूसरी बात है। साकेतिक कोष में कवि कहता है—

तव चितउर मन राजा कीन्हा । हिय सिहल बुधि पदमिनि चीन्हा
गुरु सुआ जेइ पथ दिखावा । बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा
इसमें चित्तौड़ तन है, रतनसेन मन है। चित्तौड़रूपी तन में स्थित मन साधारण रूप से लौकिक विषय वासना में लिपटा रहता है। रतनसेन केवल तन में स्थित है, उसकी वृत्तियाँ कार्यात्मक हैं। वह दुनिया धंधे (नागमती) में लिप्त है। परन्तु ईश्वर की अनुकंपा से एक दिन उसे नागमती से भी बड़े सौंदर्य का पता चल जाता है। इस दुनिया-धंधे से भी बड़ा 'धंवा' मनुष्य के लिए है। वह जान लेता है। उस लक्ष्य के लिए उसके हृदय में आकुलता उत्पन्न हो जाती है। परन्तु उस लक्ष्य तक उसका पथ-प्रदर्शक कौन बने। पथ-प्रदर्शक बनता है होरा-मन तोता (सुआ)। वह सूफी-साधना के 'गुरु' का प्रतीक है। अनेक बाधाओं को पार करके गुरु के दिखाये पथ पर बढ़ता हुआ साधक रतनसेन लक्ष्य की प्राप्ति करता है। परन्तु लक्ष्य कहीं बाहर नहीं है। इसी हृदय (सिहल) के भीतर अवस्थित ही मन तो दय बुद्धि (Intuition) ही साधक की लक्ष्य है।
अतः ५ सहज बुद्धि (पद्मिनी) को ही पाना होता है। सूफ़ी

परिभाषा मे इस संकेत-कोष को इम प्रकार भी रख सकते है—

चित्तौड़ = तन = }
 (राजा) रतनसेन = मन = } सालिक, आबिद की ‘अकल’
 (खुआ) हीरामन = गुरु = मुरशिद
 सिंहलद्वीप = हृदय = कल्ब (रूह)
 पद्मिनी = सहज बुद्धि = मुआरिफ (प्रज्ञा)
 नागमती = दुनिया-बंधा = नफस

(सालिक (साधक) के मार्ग में दो बाधाएँ हैं अकल (मन) और नफस (नागमती) । वह नफस (नागमती) द्वारा अपने तन चित्तौड़ मे ही लीन रहता है । परन्तु यदि उसे मुरशिद-कामिल (सुआ) मिल जाता है, तो वह ‘नफस’ से छुटकारा पा जाता है और कल्ब या ‘रूह’ मे स्थित ‘मुआरिफ’ (सहज बुद्धि, प्रज्ञा) की प्राप्ति की ओर बढ़ता है । नागमती (नफस) भी सुन्दर और मोहक है और पद्मिनी (मुआरिफ) भी सुन्दर है, अतः जायसी ने दोनो को सुन्दर चित्रित किया है । नफस मुरशिद मे विश्वास नहीं करती, इसी से नागमती सुए को मार डालना, चाहती है । परन्तु एक बार ‘मुआरिफ’ का सौन्दर्य साधक (सालिक) ने जान लिया तो वह मुड़ नहीं सकता । वह लक्ष्य की प्राप्ति अवश्य करेगा । कथा मे यदि नागमती की अवतारणा नहीं होती, तो नफस की मोहकता और उसके बंधन का चित्रण भी नहीं हो पाता ।

परन्तु फिर प्रश्न उठता है, नागमती के विरह और पद्मिनी के प्राप्ति पर नागमती और पद्मावती के रतनसेन के साथ प्रसन्न रहने और कमलसेन और नागसेन पुत्रो के जन्म का क्या महसूस है । नागमती का विरह केवल भारतीय साहित्य-परंपरा का कारण पद्मावत मे स्थान पा रहा है । रूपक तो है ही, परन्तु हीब विशिष्ट पात्र खड़े किये गये हैं, तो कथा की आवश्यकता

का भी पूरा करना होगा। 'षट्शतु वर्णन' के बिना कोई काव्य कैसे पूर्ण कहा जा सकता था ? इसी से 'नागमती के विरह' की योजना हुई। उसके पीछे किसी प्रकार का संकेत छूटना बुद्धि-विलास हा होगा। हाँ, सूफी-साधना में विरह का बड़ा महत्व है। इससे नागमती के विरह-वर्णन में स्वतंत्र रूप से जो 'प्रेम की पीर' प्रकाशित हो गई है, वह तो सूफी परंपरा की चोख है ही। पद्मिनी के प्राप्ति से नागमती के साथ प्रसन्नता-पूर्वक रहने का अर्थ केवल यही है कि मुआरिफ का उद्दय होने पर सालिक नफसपरस्ती से हट जाता है। उसकी इंद्रियाँ ईश्वरोन्मुख हो जाती हैं। नफस (नागमती) से भागने का उसे आवश्यकता नहीं होती। कम नसेन और नागसेन का जन्म केवल कथा को सुखद बनाने के लिए है। पद्मावती का पुत्र पद्मसेन या कमलसेन और नागमती का नागसेन। इससे अधिक कोई रहस्य इसमें नहीं है। हाँ, नागमती नाम चुनते समय जायसी को कदाचित नागशरा (बधन) का ख्याल हो आया हो।

यह रही पूर्वार्द्ध की बात।

उत्तरार्द्ध में नागमती (नफस) का कोई महत्व नहीं रह जाता। वह पद्मावती (मुआरिफ) की पोषक या सहगाँ निमात्र है। 'मुआ' और 'सिंहल' के प्रतीक भी समाप्त हो जाते हैं। कुछ नये प्रतीक आये हैं। राघवचैनन = सैतान (शैतान) अलाउद्दीन सुलतान = माया। इन दो प्रतीकों को लेकर उत्तर कथा की ओर से जायसी निश्चित हो गये हैं और अर्थ खोलने के लिए पंडित-बुद्धि को 'चैलेख' देने हैं। साधक की नफस-शुद्धि और प्रज्ञा (मुआरिफ) से उसका मेल शैतान को पसंद नहीं। खुदा और बंदे के बीच में शैतान है। 'मुआरिफ' खुदा र और ले जाती है, अतः शैतान को यह विष लाना है। शुक्रे वह बंदे और खुदा (रतनसेन और पद्मावती) में विद्वज

डालना चाहता है। वह माया की शरण जाता है। सूफी परिभाषा में रात्रवचेतन शैतान है और अलाउद्दीन—अलाउद्दीन को जायसी ने ‘माया’ कहा है। सूफी दार्शनिक चिंतन में ‘माया’ का स्थान ही नहीं है। हमारे यहाँ ‘माया’ जीव-ब्रह्म के बीच का व्यवधान है। ‘माया’ का अर्थ सांसारिकता भी है जो जीव-ब्रह्म के मिलन में बाधक होती है—जो साधक को इन्द्रियता की ओर ले जाती है। इस्लाम में ‘माया’ का स्थान शैतान ने ले लिया है। अलाउद्दीन को ‘माया’ कहकर जायसी ने भारतीय दार्शनिक चिंतन के एक शब्द को अपना लिया, परन्तु विद्वानों के लिये समस्या खड़ी कर दो। अलाउद्दीन—माया ?

सालिक जब सहज-बुद्धि, प्रज्ञा या मुआरिफ को प्राप्त हो गया तो फिर शैतान और माया का क्या काम ? परन्तु जायसी तो कथा की रक्षा करते हुए आगे बढ़ना चाहते थे। यदि वे ३७वें खंड (पुत्रजन्म खण्ड) पर ही कहानी समाप्त कर देते, तो प्रतीकों की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। परन्तु अलाउद्दीन-पद्मिनी की अत्यंत प्रसिद्ध कथा को वे एकरुदम आँख की ओट नहीं कर सकते थे। जब वह उत्तरार्द्ध की सारी कथा लिख गये, तो उन्हें विवश होकर उसके सूफी-अर्थ करना पड़े। इसी से नए प्रतीक आये। शैतान और (या) माया साधक के प्रज्ञा के आनंद में बाधा डालने के लिये सब कुछ करेगा यही तथ्य है। हो सकता है, वह सफत भी हो जाय (जैसा ‘पद्मावत’ में हुआ है) परन्तु यह किसी निश्चित तथ्य को उपस्थित नहीं करता। साधारण कथा को लेकर उसपर अध्यात्म पत्र का आगेप करने में जो कठिनाइयाँ होतीं, वह जायसी को भी हुईं। वास्तव में अध्यात्म (रूपक) की दृष्टि से उत्तरार्द्ध महत्वपूर्ण नहीं है।

(सच तो यह है कि ‘पद्मावत’ की कथा को एक निश्चित

दृष्टिकोण से देखना होगा। हम कह सकते हैं कि—

१—कथा का निश्चित भागो में बँटी है। पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। ३७वें खण्ड तक पूर्वार्द्ध जाना है।

२—पूर्वार्द्ध की कथा का आश्रय है लोक-कथा, उत्तरार्द्ध का इतिहास या ऐतिहासिक जन-प्रसिद्धि।

३—पूर्वार्द्ध की कथा समासोक्ति है। उस पर सूफी आध्यात्मिक साधना का आरोप सरलता से हो सकता है।

४—उत्तरार्द्ध की कथा में जायसी ने दो रूपक प्रतिष्ठित किये हैं, परंतु वह कदाचित् सारी कथा को आध्यात्मिक अर्थ देने के लिए। कथा के ऐतिहासिक और कथात्मक विकास में ये रूपक बह जाते हैं। इनसे किसी भी प्रकार की साधना पद्धति नहीं बनती। यह कहा जा सकता है कि रतनसेन (सालिक) की शुद्ध प्रेम के विरुद्ध अलाउद्दीन के वासनात्मक प्रेम की असफलता इस कथा द्वारा व्यंजित हुई है। जहाँ मुरशिद द्वारा नेतृत्व पाने वाला सालिक सफल है, वहाँ शैतान द्वारा बरगलाया हुआ इंसान असफल है। मुआरिफ मुरशिद की ही कृपा का फल है, शैतान तो धूल-भर दे सकता है। इस प्रकार इस खल-कथा से परोक्ष में साधक की शुद्ध प्रेम-साधना की उज्वलता पर ही प्रकाश पड़ता है। परन्तु यह कथा इस लिए नहीं लिखी गई है। केवल कथा के लिए कथा लिखकर जायसी को उसके सूफी अर्थ लगाना पड़े। वे लगा नहीं सके। शैतान और माया में वे उलझ कर रह गये। इतनी बड़ी अतिरिक्त कथा में रूपक का आरोप साधारण मेवा का काम नहीं था। इस प्रकार उत्तरार्द्ध की कथा न समासोक्ति है, न अन्योक्ति, कथा-मात्र है। उसकी कथा-मात्र भी अनिश्चित है।)

परंतु पद्मावत में केवल सूफी-साधना ही सन्निहित नहीं है। एक अन्य साधना का भी पूरा-पूरा विवरण इसमें मिलता

है। यह है योग (हठयोग) की साधना। गढ़-छेका खण्ड में इस धारा का सांगोपाङ्ग विवेचन है। हठयोग की परिभाषा के अनेक शब्दों को जायसी ने अपना लिया है। काया-नगरी की बात उन्होंने बार-बार कही है—

जैसे अहै गिरथिमी सिगरी। तैसी जानहु काया नगरी

× ×

जस चौदह खड तौन साषा

× ×

चौदह भुवन जो तर उपराहीं। ते सब मानुस के घट माही

× ×

नव पौरी बॉकी नव खडा। नवों जो चढै जाइ बरझण्डा

× ×

नव पौरी हीं। बसवँ दुवारा

× ×

नव पौरी तेहि गढ मँफियारा। अँ तहँ फिरहि पाँच कोटवारा
दशव दुवार गुपुत एक ताका। अगम चढाव बार मुठि बाका
भेटे जाइ सोइ वह प्यारी। जो लहि भेद चढै होइ चाटी
गढ तर कुड सुरंग तेहि माहीं। तहँ वह पथ कहीं तेहि पाहीं
चोर बैठि जस सँवि सँवारी। जुआ पँन जस ताव जुआरी

जस मरजिअ्रो समुद्र धँम, हाथ आब तब सीर,

ढूँढि लेह जो सरग दुआरी, चढै सो सिषलदीप

योगियों की साधना के अनेक भेद जायसी को ज्ञात हैं जैसे गुरु^१, चेला^२, धातु कमाना^३, रसायन-सिद्धि^४, हरतार^५, गंधक^६, कुक्कुटा^७, सिद्धि-गुटका^८, मेखला^९, सिवी^{१०}, चक्र^{११},

१, २—गुरु कहाँ रे चेला, अ थावली, पृ० १४७

३—८ धातु कमाय^३ सिखे तैं जोगी। अब कस भा निरधातु वियोगी
कहाँ सो खोएहु बिरवा लोना। जेहि ते होइ रूप औ सोना^४

धंधारी१२, जोग बाट१३, रुद्राक्ष१४, अधारी१५, कंधा१६, दण्ड१७, मुद्रा१८, जपमाला१९, उदपान२०, बघछाला२१, पावरी२२, छाता२३, खप्पर२४। अन्य दो ग्रंथों में उन्होंने बजासन२५, सुखमना२६ (सुषुम्ना), पिगला२७, आहार-संयम२८, ध्यान२९, अनहद३० और शून्य३१ का भी उल्लेख किया है। लोहार का रूपक लेकर कवि प्राणायाम और ध्यान को साधना को समझाता है३२। जान पड़ता है, कवि नाथपंथियों (योगियों) की साधना से पूर्णतः परिचित था और पद्मावत के पूर्वार्द्ध में उस साधना को ही प्रधानता दी गई है। परंतु यह प्रधानता ऊपरी है। जायसी अपने प्रदेश में प्रचलित योगियों की हठयोगी साधना के स्तर पर प्रेम की साधना की प्रतिष्ठा कर रहे हैं, यह स्पष्ट है। पद्मावती की सखियाँ रतनसेन के जोगीवेष की खिल्ली उड़ाती हैं और उसके संबंधों को बर्णन करती हैं। तब रतनसेन भी जोगी-साधना की असार्थकता बता कर कवल प्रेमतत्त्व की दुहाई देता है और उसे ही प्रियतम-प्राप्ति की एकमात्र साधन मानता है। स्पष्ट है कि लक्ष्य पर पहुँच कर रतनसेन का इस तरह कहना कुछ विशेष अर्थ रखता है—

का हरतार५ पार नाहे आवा । गवक६ कस्हे कुटकुटा७ खावा ।
तजा राज राजा भा जागीह । ओ किगरी कर गहे वियोगी
तन बिसँभर मन वाउर लटा । अरुभा प्रेम परी सिर जटा
मेखल९ सिधी १०चक्र११ धंधारी१२ । जोग बाट१३ रुद्राक्ष१४ अधारी१५
कंधा१६ पहिरि दण्ड१७ कर गहा । सिद्ध होय कहँ गोरख कहा
मुद्रा१८ सुवन कठ जयमाला१९ । कर उदपान२० काव बघछाला२१
पावरी२२ पाव, दीन्ह सिर छाता२३ । खप्पर२४ लीन्ह भेस करि राता
चला मुगुति मोगे कहँ साधि कया तप जोग ।

सिद्ध होइ पद्मावति जेहि कर दिए वियोग ॥

(वही, ६०)

का पूछहु तुम धातु निछोही । जो गुरु कीन अंतर पट ओही
सिधि गुटका अब मो सग कहा । भएउ राँग सत हिए न रहा
सो न रूप जासौं दुव स्तोनों ! गएउ भरोस तहाँ का बोलौ
जँह लोना बिरवा कै जाती । कहि कै सदेस श्रान को पाती
कै जो पार हरनार करोजै । गधरु देखि अबहि जिउ दीजै

× × ×

होइ अबरक इगुर भया फेरे अगिनि भँह दीन्ह ।

काया भीतर होइ कनक जो तुम चाहौ कीन्ह ॥

विष जो दीन्ह अमृत देखाई । तेहि रे बिछोही को पतियाई
मरै सोइ जो होय बिगूना । पीर न जानै बिरह बिहूना

× × ×

सिद्ध गुटीका जा पहुँ नहीं । कौन धातु पूछहु तेहि पाहीं

ऊपर के उद्धरण मे स्पष्टरूप से ‘जोग’ की साधना की अव-
हेलना है । योग के बाह्याडंबरो और साधनों को प्रेम से नीचे
बताया है । ‘भयउ राँग मत दिए न रहा’ से इस बात का ही
इंगित है । जान पड़ता है, जायसी हठयोग और सूफामत का
समन्वय चाहते हैं और योग की अनेक साधनाओं को मानते हुए
अंत मे ‘प्रेम की पीर की साधना’ को ही सबसे ऊँचा बताते हैं ।
रूपक-कोष मे भी उन्होंने सूफी रहस्य-साधना का ही इंगित
किया है । बहुत-सी बातों मे सूफियो और योगियों मे साम्य
था । सूफियो की भाँति जोगी भी अंतःसाधना पर बल देते थे
और काया (पिंड) के भीतर ब्रह्म (ब्रह्मांड) को ढूँढते थे ।
‘जहाँ तक काया-गढ़ का भेदन और इंद्रियो का शम-दम द्वारा
नियमन है, वहाँ तक जायसी का योगी-मतवाद से कोई विरोध
नहीं । परन्तु सारी कथा पर सूफी मतवाद के अनुसार रूपक
खड़ा करने से जायसी सूफी ही निकलते हैं, जोगी नहीं ।

कदाचित् जायसी कबीर को सूफो ही मानते थे, इसी से “एक जुलाहें तैं मैं हारा” नारद (माया) के मुँह से कहलाते हैं। कबीर के सिद्धांतो मे अपने मतवाद को पुष्टि देखकर जायसी ने उन्हें आदर से याद किया है। दोनो मे अंतर यही है कि कबीर बेशिरा (जिदीक) सूफो हैं, जायसी ‘बाशिरा’।

प्रकृति

(सूफो प्रकृति को परमात्मा का प्रतिबिम्ब मानते हैं। इस दृष्टि से प्रकृति उन्हें बड़ी प्रिय है और वह प्रकृति प्रेम को परमात्मा तक पहुँचने का साधन समझते हैं। सारे भारतीय साहित्य मे प्रकृति का इतना रोमांचक, इतना अतिशयोक्तिपूर्ण परन्तु ऐश्वर्यशाली वर्णन कहीं भी मिलेगा, जिनना सूफो काव्य मे। अंग्रेजी रहस्यवादी और रोमांटिक कवियों के प्रकृति-काव्य से हम इसकी तुलना कर सकते हैं।)

जायसी के प्रकृति के प्रयोग अनेक ढंग के हैं। सघन अमराई का एक वर्णन लीजिये। कवि कहता—

घन अमराउ लाग चहुँ पासा । उठा भूमि उत लागि आकासा
तरिवर सबै मलयगिरि लाई । भइ जग छौं रैनि होइ आई
मलय समीर सोहावनि छाहीं । जेठ जाइ लागै तेहि माहीं
ओही छौं रैनि होइ आवै । हरियर सबै अकास दिखावै
पथिक जो पहुँचै सहि कै घामू । दुख बिसरै, सुख होई बिसरामू
जेइ वह पाई छौं अनूरा । फिर नहि आइ सहै यह धूपा
फरै आब अति सघन सोहाए । जौ जस फरै अचिक घिर नाए
खिरनी पाकि खौंड असि मीठी । जामुन पाकि भँवर अस दीठी
पुनि महुआ चुआ अधक मिठासू । मधुजस मीठ पुहुप जस बासू
लवंग सुपारी जायफल सब फर फरे अनूप ।
आस पास घन इमिली औ घन तार खजूर ॥

भोर होत बोलहिं चुहचुही । बोलहि पाडु रु “एकै तुही”
 सारौ सुआ जो रहचह करहीं । कुरहि परवा औ करबरहीं
 ‘पीव पीव’ कर लाग पीवा । ‘तुही तुही’ कर गडुरी जीहा
 ‘कुहू कुहू’ करि कोइलि राखा । औ भिगराज बोल बहु भाषा
 ‘दही कहीं’ कर महरि पुकारा । हारिल बिनवै आपनहारा
 कुहुकहि मोर सुहावन लाग । होइ कुराहर बोलहि कागा

जावत पखी जगत के भरि बैठे अमरौउ ।

आपनि आपनि भाषा लेहि दई कर नाँरा ॥

स्पष्ट कि कवि फल-फूलों और पशु-पक्षियों को सूची दे देना प्रकृति-वर्णन मानता है । न जान क्यो, जायसी ने स्थान-स्थान पर अपनी ज्ञान-बहुलता दिखाई है । मसनवी-काव्य में इस प्रकार की प्रवृत्ति नहीं है । कवि मतव्य विषय को लेकर आगे बढ़ता है, सूची उसे नहीं देना । कहाँ से यह परिगणन-शैली जायसी के हाथ लगी, यह कहना कठिन है ।

परन्तु यह परिगणन शैली कहीं-कहीं इतनी दूर चली जाती है कि नीरसता के सिवा पाठक के हाथ और कुछ नहीं लगता । एक ‘बारी’ (बाग) का वर्णन करता हुआ कवि कहता है —

आम-पास बहु अमृत बारी । फरी अपूर, होइ रखवारी
 नारँग नीबू सुरँग जेभीरा । औ बदास बहु भेद अजीरा
 गलगल तुरँज सदाफर फरे । नारँग अति रात रस भरे
 किसमिस सेव परै नौ पाता । दारिउँ दाख देखि मन राता
 लागि सुहाई हरफारयोटी । उनै रही केरा कै घौटी
 फरे तूत वमरग औ न्यौजी । राय करौदा बेर चिरौंजी
 सगतरा व लुहारा दीठे । और खजहजा खाटे मीठे

इस प्रकार के ‘कोष’ साहित्य में क्या स्थान पा सकेगे ? जायसी का काव्य भी सब से बड़ी दुर्बलता यही वर्णन है ।

परन्तु जायसी ने केवल वस्तु-ज्ञान और अनुभूति पर ही अपने प्राकृत काव्य का महल नहीं खड़ा किया है, उन्होंने कल्पना से प्रकृति तत्त्वों में परिवर्द्धन भी करना चाहा है। खीर (चीर) समुद्र, दधि-समुद्र, उदधि-समुद्र (?), सुरा-समुद्र, किलकिला-समुद्र जैसे नये-नये कल्पना के समुद्र जायसी के काव्य में ही मिलेंगे। किलकिला-समुद्र का वर्णन देखिये—

भा किलकिल अस उठै हिलोरा । जनु अकास टूटै चहुँ ओरा
उठे लहर परवत के नाईं । फिरि आवै जाजन सौ ताईं
धरती लेह सरगि लहि बाढा । सकल समुद्र जानहुँ भा ठाढा
नीर होय तर ऊपर सोई । माथे रग समुद्र जस होई
फिरत समुद्र जोजन सो ताका । जैसे भँवे कोहर का चाका
गै औसान सबन्ह का देखि समुद्र कै बाढि ।

नियर होत जनु लीलै, रहा नैन अस काढि ॥

इस प्रकार के अनेक चमत्कारपूर्ण, कल्पना-प्रसूत वर्णन जायसी के प्रकृति-काव्य की विशेषता हैं। परन्तु प्रकृति-संबन्धी ये वर्णन स्वच्छंदवाद (रोमांटिक काव्य) के अन्तर्गत आते हैं जिनमें कवि अतिशयोक्ति से काम लेकर किसी अज्ञात ऐश्वर्य लोक की सृष्टि करता है।

ताल-तलाव बरनि नहिं जाहीं । सूझै वारपार किछु नाहीं
फूले कुमुद सेत उजियारे । मानहुँ उए गगन महँ तारे
उतरहिं मेघ चढ़ेहि लेह पानी । चमकहि मच्छ बीजु कै बानी

×

×

×

इस प्रकार के वर्णन पद्मावत में अधिक नहीं हैं, परन्तु जो हैं वे उसे विशिष्टता प्रदान करते हैं। कुछ वर्णनों में कवि प्रकृति को सजीव चित्रित करता है। मानसरोवर खंड में जब पद्मावति सरोवर में नहाने जाती है तो सरोवर उसके रूप में मोहित हो जाता है—

गे

सरवर रूप विमोहा, हिये हिलोरहि लेइ
पावँ छुवै मकु पावौँ ऐहि मिस लहरेहि लेइ

‘यहाँ स्पष्ट ही पद्मावति साधारण नायिका नहीं है, वह किसी और बड़ी चीज का प्रतीक है। जायसी ने उसे मुआरिफ़ (प्रज्ञा) के स्थान पर रखा है जिसे ईश्वर का प्रतिबिम्ब कह सकते हैं। लक्षणा से उसे परमात्मसत्ता भी मान सकते हैं। इसी तरह पद्मावति के बाल बिखरने पर संसार में अंधेरा हो जाता है। चकई चकवी भिछुड़ जाते हैं। एक चाँद तो आकाश (सरग) में था ही, यह दूसरा चाँद दिन में उग आया, अब मिलना कैसे होगा ? वास्तव में पद्मावति के बाल ‘माया’ का वह आवरण है जिससे ईश्वर (अल्लाह) अपना सौन्दर्य (जलवा) छिपाता है। इस प्रकार के छोटे-छोटे इंगित सारे काव्य में छिपे हुए हैं और कवि उनमें अध्यात्म संबन्धी बड़ी-बड़ी बातें कह गया है।

नामगती के विरह-वर्णन के संबन्ध में हमने अलग विचार किया है इस विरह-वर्णन का आधार षट्ऋतुवर्णन है जो प्रकृति सम्बन्धी काव्य का एक अंग है। प्राचीन काव्यों में षट्ऋतु वर्णन और नखशिख-वर्णन की एक परंपरा चली आती थी। यह परंपरा लोकाव्य से प्रतीत हुई थी। जायसी इस परंपरा से परिचित है और उन्होंने अपने काव्य में षट्ऋतु-वर्णन और नखशिख-वर्णन की दोनों परंपराएँ ग्रहण की हैं। इसमें संदेह नहीं हिन्दी षट्ऋतु-वर्णनों में जायसी का षट्ऋतु-वर्णन अद्वितीय रहेगा। केवल उसी के आधार पर हम जायसी का महाकाव्यत्व को मान लेते हैं।

परंतु उपमानों के रूप में जायसी में प्रकृति वर्णन बहुत अधिक मात्रा में मिल जाता है। कदाचित् सारे हिन्दी काव्य

मे उपमानो के लिए प्रकृति की इतनी खोज किमी कवि ने नहीं की। कुछ उद्धरण कवि के चुके हुए उपमानो की सार्थकता पर प्रकाश डालेंगे—

जावत पखी जगत के भरि बैठे अमराउं
आपनि आपनि भाषा लेहिं दई कर नाउं

जिसने पावस मे अमराइयो में भुण्ड के भुण्ड पक्षी बैठे हुए, चहकते हुए देखे हैं, वही इस उपमा की सुन्दरता को जान सकता है। तालाबों मे कोई फटना सबने देखा होगा, परन्तु हृदय की व्यथा बताने के लिए भला किसने इस उपमा का प्रयोग किया है—

कित करमुहें नैन भए, जीउ हरा जेहि बाट
सखा नीर-विछोह जिमि दरकि-दरकि हिय फाट

हृदय की व्यथा की इतनी सार्थक उपमा और कौन दे सका है। नागमती अपने दुःख से दुःखी है। इसी से वह कहती है—

काह हँमौ तुम मौगै, किएउ और भौं नेह
तुम मुख चमकै बीजुगी, मोहि सुख बरसै मेह

कहीं-कहीं पर प्रकृति के सुन्दर उपमानो के द्वारा कवि आकाश-पाताल को छान डालता है और इतनी बड़ी बात कहता है कि हमें आश्चर्य होता है। रत्नसेन गजपति से अपने प्रेम की तत्रता की बात कह रहा है—

सरग सीस, धर धरती, हिया मो पेम समुद्र
नैन कौडिया हाइ रहै, लेइ लेइ उठहि सो बुद

आकाश शीश है. धड धरती है, हृदय मे जो समुद्र हिलौं मार रहा है, वह प्रेम है। नेत्र कौड़ी मात्र हैं। वे बूँद-बूँद भर कर इस प्रेम-समुद्र को कैसे उलीच सकेंगे ?

इस प्रकार हम देखते हैं कि जायसी के प्रकृति वर्णन के कई रूप हैं :

(१) परिगणन शैली (इसमें वस्तु का नाम कथनमात्र रहता है)

(२) रोमांचक शैली (इसमें वस्तु का अतिशयोक्तिपूर्ण चमत्कारिक वर्णन होता है । साधारण वस्तु को असाधारण और अलौकिक बनाने के लिए इस शैली का प्रयोग हुआ है)

(३) रहस्यवादी शैली (इसमें कवि योग का सूफी-मत के आधार पर कोई प्राकृत रूप खडा करता है)

(४) उपमान-शैली (उपमानों के रूप में प्रकृति के अनेक व्यापारों का व्यापक प्रयोग रहता है) इसके कई वर्ग हो सकते हैं :

(क) जहाँ उपमान केवल काव्योपयोगिता की दृष्टि से आये है ।

(ख) जहाँ उपमान उपदेश देने के लिए या किसी उपदेश का पुष्ट करने के लिए आये है ।

(ग) नखशिख के प्रसंग में ।

(घ) मानवी भावनाओं के वर्णन में ।

(५) प्रतीक शैली (इसमें कवि प्रकृति की कुछ विशेष वस्तुओं को प्रतीक के रूप में ग्रहण करता है । सूरज चाँद ; कँवल-भँवरा इत्यादि प्रतीक बग़बर पद्मावति और रतनसेन के लिए प्रयोग में आये हैं । जहाँ कवि अभिधार्थ से हटकर एकदम आध्यात्मिक अर्थों को उपस्थित करना चाहता है, वहाँ वह वर्ण्यवस्तु की जगह कोई न कोई प्रतीक रख देता है ।

इसमें सदेह नहीं कि जायसी का प्रकृतिकाव्य महत्त्वपूर्ण है । उनका प्रसिद्ध दोहा है—

कँवल जो विगमा मानमर गिनु जल गयउ मुखइ ।

कबहूँ बेलि फिर पल्लुहै जो पिउ मीचे आइ ॥

इस दोहे की प्रसिद्धि इमी लिए है कि इनमें प्रकृति के एक बड़े मार्मिक दृश्य को विरह को अभिव्यंजना के लिए ग्रहण कर लिया गया है। मानसरोवर में कमल का बिलना, सरोवर का सूख जाना और फलत कमलबेलि का मुरझा जाना, प्रियतम का आना और उस कमल-बेलि को सँचना ऐसे चित्र हैं जो कठिन से कठिन हृदय में करुणा का संचार कर देंगे। ऐसे अनुपम चित्र केवल अनुभूत हृदय ही उपस्थित कर सकता था। इसमें संदेह नहीं कि जायसी का सारा काव्य अनुभूति पर खड़ा है। उसमें कवि के विशाल सामारिक ज्ञान के दर्शन तो होंगे, परंतु पांडित्य के रूप में नहीं। कवि ने जो देखा है, जो अनुभव किया है, हृदय-मन की वह सारी सामग्री कल्पना और भावुकता के तागे में कवि ने पिरो दी है। संसार के किसी काव्य में इस सहृदयता की उपमा नहीं मिलेगी। एक विधर्मी कवि अन्य धर्म के चरित्रों को लेकर इतनी सहानुभूति, प्राणों की इतनी वेदना भरेगा, इसमें संदेह है। इस संदेह से ऊपर उठकर जायसी अमर हो गए हैं। उनका पद्मावत भाषा, भाव, छंद, उपमा-उपमान सब में एकांततः भारतीय है। यह अवश्य है कि रूपक रूप में सूफा-साधना भी इस कथा पर घटित की गई है, परंतु जायसी ने साधना का जो रूप उपस्थित किया है, वह इतना सरल है कि किसी भी धर्म की अपेक्षा नहीं रखता।

साहित्य कोटि

हम पद्मावत के रूपकत्व और उसके अध्यात्म-पक्ष पर विचार कर चुके। अब हमें उसके साहित्य-पक्ष पर विचार करना है।

सब मे पहले हम पद्मावत की साहित्य कोटि की बात लेंगे। पद्मावत महाकाव्य है, या खंडकाव्य—उसकी साहित्य कोटि क्या है, यह विचारणीय है।

जैसा हम कह चुके हैं, कथा-काव्यों की एक परंपरा अपभ्रंश-काल से बराबर चली आ रही थी। जैन साहित्य के ‘रासा’ ग्रंथ और चारणों के ‘रासो’ (ऐतिहासिक पुरुषो के इतिवृत्त) को हम शास्त्रीय परिभाषा मे महाकाव्य नहीं कह सकते। उन्हे हम कथा काव्य भर कह सकते हैं। कथा-काव्य छोटे हों, या बड़े उनमे कथा की धारा अविच्छिन्न रूप से बहती चलती है। पात्रों की रूपरेखाएँ विशेष स्पष्ट नहीं होतीं। केवल कथा रस ही लक्ष्य होता है। न हम नायक से उदात्त चरित्र की आशा रखते हैं, न सगों का भेद, न छंदों की विभिन्नता। जान पड़ता है, सूफी कवियो से पहले अवधी मे इस प्रकार के काव्यों की परंपरा चल रही थी। १४वीं शताब्दी से इस तरह के कथा-काव्यों की परंपरा बराबर मिलती है जिन पर सूफी भिद्धातो का आरोप किया गया है। इन सूफी कथाकाव्यो के रचयिता मुसलमान सूफी थे और वे मसनवियों की साहित्यिक परंपरा से भी परिचित थे। इस मसनवी शैली मे ५ या ७ बन्दो के बाद एक ‘बैत’ रहता था। इसी के आधार पर अवधी सूफी काव्यों ने ५ या ७ अर्द्धालियो के बाद एक-एक दाहे या सोरठे की योजना की। मसनवी मे खुदा, पैगम्बर और शाहेवक्त की प्रशंसा से काव्य का आरंभ होता था। अवधी सूफी कवियो ने अपने काव्य में पहले-पहल इन्ही विषयो का लिया। परंतु इस थोड़े से साम्य के अतिरिक्त मसनवियो और इन सूफी कथा-काव्यो मे कोई साम्य नहीं मिला। वे निश्चय ही उन प्रेम-कथा-काव्यों की परंपरा मे आते हैं जो प्राकृत और अपभ्रंश मे जन-प्रसिद्धि पा चके थे। इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्तियों की प्रेमलीला को वर्ण-

विषय बनाया जा चुका था। 'बीसलदेव रासो' और 'कुतुबुद्दीन और साहिबा की कथा' इसके प्रमाण हैं। अतः 'पद्मावत' (१५४०) की साहित्य कोटि कथा-काव्य की ही है। पद्मावत की कथा अत्यंत वृहद् है। उसमें महाकाव्य के अनेक अंग मिल जाते हैं जिनका वर्णन साहित्यदर्पण में हुआ है। परंतु यह मिलना आकस्मिक है। वास्तव में वृहद् कथा से ही कोई काव्य महाकाव्य नहीं हो जाता। इसी से शास्त्रीय परिभाषा में 'पद्मावत' महाकाव्य नहीं है। परंतु जायसी कदाचित् उसे महाकाव्य की कोटि देना भी नहीं चाहते थे। अतः यदि जायसी क ग्रंथ में महाकाव्य के सारे लक्षण मिल जाते हैं, ^{यु} ^ह कोई महत्वपूर्ण बात नहीं है।

कथा-सोष्ठव

'पद्मावत' की कथा को हमने अन्यत्र दिया है और उसकी ऐतिहासिकता पर भी विचार किया है। उसके रूपक-तत्व पर भी हमने विशद रूप से लिखा है। यहाँ साहित्य की दृष्टि से उस पर विचार करना है।

जैसा हमने पहले कहा है, 'पद्मावत' में दो कथायें हैं जो स्वतंत्र रूप से चल सकती थीं। इन्हे हम क्रमशः रत्नसेन-पद्मावती की कथा और पद्मावती अलाउद्दीन की कथा कह सकते हैं। कथा-सोष्ठव को इससे हानि पहुँची है। दो सष्ट कथायें एक कथा में गूँथ कर जायसी ने दोनों के साथ अन्याय किया है, परंतु जायसी का आधार साहित्यशास्त्र नहीं था। लोककथा के रूप में कथा जिस प्रकार चल रही थी, उस प्रकार ही जायसी ने उसे ग्रहण कर लिया।

साहित्यशास्त्र की दृष्टि से कथा में पचसधियाँ मिल सकती हैं। कम से कम पूर्वार्द्ध की कथा इस दृष्टि से अधिक पुष्ट है।

उसमें स्वतः ही नाटकीय पंचसंधियों की स्थापना हो गई है, परंतु उत्तरार्द्ध की कथा केवल जनकथा या इतिहास-कथा की पुनरुक्ति मात्र है। अतः उसमें सौष्ठव को और कवि प्रयत्नशील नहीं हो सका है।

(इसके अतिरिक्त कथा की द्वैत स्थिति भी उसके सौष्ठव में बाधा डालती है। कवि को कथा और रूपक को साथ साथ लेकर चलना है। इसका अर्थ यह है कि केवल कथा-रस की पुष्टि के लिए वह स्वतंत्र नहीं है। बीच-बीच में कवि को बड़े-बड़े प्रकरण केवल इसलिए रखना पड़े है कि उनसे उसका आध्यात्मिक पक्ष पुष्ट होता है। कथा के स्वाभाविक प्रवाह में ये बाधा डालते हैं। सच्चेप में, हम कह सकते हैं कि पद्मावत की कथा-वस्तु संपूर्ण रूप से संगठित नहीं है। पहले तो कथा के केन्द्र दो हैं। ३१वे खंड के बाद एक कथा समाप्त हो जाती है और दूसरी कथा चलने लगती है। दूसरे अध्यात्मपक्ष को घटाने के कारण कथा के संगठन में शिथिलता आ गई है। अनेक ऐसे प्रसंगों का समावेश कवि को करना पड़ा है जो कथा के संगठन की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं हैं।)

रस

‘पद्मावत’ मूलतः प्रेमकथा है अतः शृङ्गार रस के संयोग और वियाग (विप्रलम्भ) पक्ष का समावेश उसमें विशद रीति से हुआ है। परंतु शृङ्गार रस के अतिरिक्त अन्य रसों का भी समावेश कथा-प्रसंगों के कारण हो गया है। य गौण रस करुण, वात्सल्य, वीर, शंभ और वीभत्स है। वार, शांत और वीभत्स का संबंध मुख्यतः उत्तरार्द्ध के युद्धों से है। करुण रस जोगी-मन्त्र-उत्तरार्द्ध और सतीर युद्ध में व्यापक रूप से निरूपित हुआ है। वात्सल्य और शंभ के छोटे-छोटे प्रसंग अनेक बार आते हैं।)

(क) शृङ्गार का संयोग-पक्ष

पहले हम शृङ्गार रस को लेंगे। उसमें भी पहले संयोग-पक्ष को। 'पद्मावता' की कथा रत्नसेन, नागमती और पद्मावती को लेकर चलती है। संयोग-शृङ्गार के लिए नागमती और पद्मावती दोनों महत्वपूर्ण हैं। सावना की दृष्टि से नागमती और पद्मावती में चाहे जो अंतर हो, साहित्य की दृष्टि से कोई अंतर नहीं। दोनों रत्नसेन की प्रिय हैं, यद्यपि नागमती को प्रिय-वियोग का दुःख भी उठाना पड़ता है। इसी से कवि पद्मावति और नागमती के संयोग-शृङ्गार में अन्तर नहीं कर सका है। वास्तव में संयोग-पक्ष सूफियों को उतना प्रिय नहीं है, जितना वियोग-पक्ष। इसीसे संयोग-चित्रण में वह विशेष सफल नहीं हो पाते। इससे उनके आध्यात्मिक मतव्य की भी विशेष पुष्टि नहीं होती। जीव ब्रह्म के महामिलन को संतो और सिद्धों ने स्त्री-पुरुष के मिलन के रूपको द्वारा चित्रित किया है। उस महामिलन का आनंद चाहे भिन्न कोटि का हो, इसमें संदेह नहीं कि वह नर-नारी (पति-पत्नी या प्रेमी-प्रेमिका) के मिलनानंद से प्रकार-भेद और तीव्रता में भिन्न नहीं है। पद्मावती और रत्नसेन जीव-ब्रह्म के प्रतीक नहीं हैं, जैसा कुछ विद्वानों का आग्रह है। पद्मावती प्रज्ञा है—इसी के द्वारा परमात्म की झलक मिल सकती है—यह वह दर्पण है जिसमें परमात्म-तत्व की झलक पड़ती है। रत्नसेन साधक (सालिक) है। परंतु साधक के लिए प्रज्ञा की प्रति भी कोई कम आनन्दप्रद नहीं है। इसी से जायसी इस मिलनानन्द का भी विशद वर्णन करते हैं। परंतु रूपक प्रवेस पद्मावती के सम्बन्ध में ही ठीक उतरता है। नागमती के सम्बन्ध में यह बात लागू नहीं होती। नागमती तो दुनिया-धन्दा, धन्दा में भी तो मनुष्य पहले उसी तीव्रता से चिक पड़े

फिर सूफियो को तो प्रेम चाहिये । जहाँ प्रेम मिला, संयोग-वियोग की परिस्थितियाँ आई, वहीं वह पारलौकिक प्रेम का अनुभव करने लगे ।

जो हो, इसमें संदेह नहीं कि जायसी में संयोग और वियोग दोनों प्रेम-पक्षों के सम्बन्ध में सुन्दर-सुन्दर चित्रण उपस्थित है । रत्नसेन बरात सजा कर आ रहा है । पद्मावति के हुलास का ठिकाना नहीं—

हुलसे नैन दरस मद्माते । हुलसे अवर रग रस राते
हुलमा वदन अप रवि पाई । हुलसि हिया कंचुकि न समाई
हुलसे कुच कमनी बँद टूटे । हुलमी भुजा, बलम कर फूटे
हुलसी रक कि रावन राजू । राम लखन पर साजहि आजू
आजु चोंद घर आवा सूरू । आजु सिंगार होइ सब चूरू
आजु कटक जोरा है कामू । आजु विरह सौ होइ संग्रामू

अग अग सब हुलसे कोइ कतहूँ न समाइ
ठावहिं ठाव बिमोही गइ मुरछा तन आइ

कवि जब रत्नसेन-पद्मावति की सुहागरात की आयोजना करता है तो वह दंपति को महल के सातवे खंड में ले जाता है । कदाचित् सात खंडों से सूफियों के सात मुकामात निर्दिष्ट है । अंतिम खंड (मंजिल) में पहुँच कर हा प्रिय की माँकी मिलती है । एक दूसरी तरह से भी कवि इस मिलन की अलौकिकता की व्यंजना करता है । सावना की सूक्ष्मता और कोमलता का प्रतीक मिलन-शैया है—

२ आत सुकुवोर सेज सो दासी छुवै न पावै कोइ
जनु प्रयागखत नवै खिनहि खिन पौव धरत कस होइ

१ में पद्मावति के पछतावे से अधिक साधक का
सुन पढ़ा है ।

बारि बैस गह प्रीति न जानी । तरुनि भई सैमत भुजानी
जोवन-गरब न मैं किछु चेता । नेह न जानौ मारव कि सेता
अध्यात्म साधक के मन मे भी कुछ इसी तरह की चिन्ता
होती है—

हौ बारी औ दुजरिन पीव तरुन सह तेज
ना जानौ होहहि चंडत कत के सेज

उधर परमात्मसत्ता (या प्रज्ञा) भी एकदम अलिप्त नहीं रह
सकती । पद्मावति रत्नमेन से मिलने के समय अपनी विरह-
व्यथा की व्यंजना करती है—

बिनु जल मीन तलफ जस जीऊ । चातकि भएउँ कहत 'पिउ पिऊ'
जरिउँ विरह जस दीपक-वाती । पय जोहन भइ सीप सेवाती
डाढि डाढि जिमि कोइल भई । भइउँ चकोरि, नींद मिसि गई
तोरे पेम पेम मौहि भएऊ । राता हेम अग्नि जिमि तएऊ
हीरा दिये जौ सूर उदोती । नाहित कित पाहन कित जूती
रवि परगासे कँवल बिगासा । नाहिंत कित मधुकर, कित बासा
इस प्रकार के वर्णन दोनो पक्षों पर घटित होते हैं ।
लौकिक तो वे हैं ही, आध्यात्मिक की वे सफलता-पूर्वक
व्यंजना कर सकते हैं । यहाँ तक तो ठीक, परन्तु जब
कवि रति-संग्राम का वर्णन करने लगता है, तो आलोचक
कठिनाई में पड़ जाता है । इसकी व्याख्या किस प्रकार
करे ? इसे तो केवल लौकिक पक्ष में घटाय जा सकता है ।
साथ ही इससे कवि की रुचि की निकृष्टता का भी पता चलता
है । कवि कहता है—

भएउ जूझ जस रावन रामा । सेज बिधोसि विरह^४ वात
लीन्ह लंक, कचन-गढ दूटा । कीन्ह सिगार अहा^५ न.
औ' जोवन मैमन्त विधोसा । विचला विरह जीउ^६

टूटे अग अग सब मेसा । छूटी मोंग, भंग भए केसा
कंचुकि चूर, चूर भइ तानी । टूटे हार, मोति छहरानी
बारी, टाड सलोनी टूटी । बाहू कंगन कलाई फूटी
चंदन अग छूट अस भेटी । बेसरि टूटि, तिलक गा मेटी

पिउ पिउ करत जो सुखि धनि चातक की भौति

परी सो बूँद सीप जनु, मोती हो सुख-माति

यहाँ ‘मैमंत’ शब्द विचारणीय है । अर्थ है ‘अहंता’, ‘अहंकार’ ।
इस अंतिम मिलन में साधक के अहंकार का नाश हो जाता है—
यही कवि बतला रहा है । परन्तु चित्रण इतना स्थूल हो गया है
कि सूक्ष्म स्वर उसमें दब गये हैं । कवि यहाँ सुराही-प्याले का
भी उल्लेख करता है । सूफियो में मदपान ईश्वरीय प्रेम का
प्रतीक है, इसी से सुहागरात के समय कवि ने इनकी योजना की
है । वास्तव में प्रेम-सुरा के इस वर्णन में परोक्ष प्रेम ही
इंगित है ।

सुनु, धनि ! प्रेम सुरा के पिये । मरन जियन डर रह न हिए
जा कहँ सोइ बार एक लाहा । रहै न ओहि बिनु, ओही चाहा
अरथ दरब सब देइ बहाई । की सब जाहु, न जाइ पियाई
रातहु दिवस रहै रस भोजा । लाभ न देख, न देखै छीजा
अन्त में महामिलन के इस चित्र को देखर हम इस प्रसंग को
समाप्त करेंगे—

सब निसि सेज मिला ससि सुरु । हार चीर बलया भए चूरु
सो धनि पान, चून भइ चोली । रग-रगोलि निरंग यह भोजी
अलक सुरागिनि हृदय परी । नारंग छुव नागिनि विष भरी
लरी मुरी हिय-हार लपेटी । सुरसरि जनु कालिदा भेटी
जनु प्रयाग अरइल बिच मिली । सोभित बेनी रोमावली

नाभी लाभु पुनिन कै कासी-कुण्ड कहाव
देवता करहिं कल्प सिर आपहु दोष न लाव

इस प्रकार के गर्हित शृङ्गार-प्रसंगों का अर्थ क्या हो सकता है ? हम देखते हैं कि सिद्ध, संत और वैष्णव काव्य में इसी प्रकार के स्थूल संयोग-चित्र मिलेंगे। इनसे अलौकिक प्रेम-भाव की तीव्रता ही व्यंजित है। हमारे धर्म, साहित्य और काव्य में रति-भाव का अन्यतम चित्रण वर्जित नहीं है। काम भी मनुष्य का एक लक्ष्य है। धर्म, अर्थ और मोक्ष की तरह वह भी उपादेय है। भारतीय धर्म-साधकों ने 'काम' को भी धर्म और मोक्ष की साधना का माध्यम बना दिया है। कदाचित् यह तत्र-साधना का प्रभाव हो या एतद्देशी मूल द्राविड़ साधना ने इसे जन्म दिया हो। जगन्नाथजी के मंदिर पर चौरासी आसनो के चित्र आज चाहे जितने ही निच समझे जायें, वे केवल कामोद्दीपक प्रसंग-मात्र नहीं हैं। कलाकार ने इन रूप रेखाओं को कुछ ऐसा तोड़-मोड़ दिया है कि ये चित्र मानव के क्रीड़ा-विलास नहीं रह जाते। काव्य में कालीदास, जयदेव, विद्यापति और सूर इसी परम्परा को आगे बढ़ाते हैं। कबीर के काव्य को हम क्यों छोड़ दे ? उसमें भी अध्यात्म-पक्ष को लौकिक रति-प्रसंग से ही सहारा मिला है। आज भी रहस्यवादी कवि 'जुही की कली' और पवन अथवा शैफाली और शिशिर-विदु की क्रीड़ा से जीव-ब्रह्म के मिलनानंद की व्यंजना करते हैं। इस दृष्टि से जायसी का स्थूल मिलन-चित्र विशेष लांछना की वस्तु नहीं रह जाता। सारं प्रसंग के अन्त में कवि स्पष्ट रूप से उसे अध्यात्म प्रश्न पर घटा देता है —

करि सिगार तापहँ का जाऊँ । ओही देखहुँ ठॉवहि ठाऊँ
 जो जिउ मे तौ उहै पियारा । तज मन सौ नहि होइ किनार
 नैन माँह है उहै समाना । देखौँ तहाँ नाहि कोउ आनारा
 यह तो अध्यात्म ही हुआ । प्रेम की पराकाष्ठा पर पहुँच कर सारा
 जग ही 'सियाराममय' हो जाता है। कवि ने पग-पग पर रत्नसेन

और पद्मावती को दृष्टि से ओम्कल कर परमार्थिक तत्त्वों के विकास को चेष्टा की है। इसी से वह पद्मावती रत्नसेन को उनके नामों से याद न कर कँवल-सूर, मालति-भँवर, सूरज-चाँद जैसे प्रतीकों के नाम से याद करता है। लक्ष्मी-समुद्र खण्ड में तूफान के बाद बिछुड़े हुए पद्मावती और रत्नसेन मिलते हैं—

लेइ सो आइ पद्मावति पासा । पानि पियावा मरत पिआसा
पानी पिया कँवल जम तपा । निकमा सुरुज समुद्र महुँ छुपा
जानहु सूर कीन्ह परगासू । दिन बहुरा, भा कँवल विगासू
कँवल जो विहँसि सूर-मुख दरसा । सूरज कँवल दिष्टि सौ परसा
लोचन कवल सैरीमुख सूरू । भएउ अनद दुहँ रस मुरू
मालति देखि भँवरि गा भूली । भँवर देखि मालति बन फूली
देखा दरस, भए एक पासा । वह ओहि के वह औहि के आसा
कचन दाहि दोन्ह जनु जीऊ । ऊवा सूर, छूटिगा सीऊ

पाय परी धनि पीउ के, नैनन्ह सौँ रज भेट

अचरज भएउ सबन्ह कहँ यह ससि कँवलहि भेट

प्रिय के प्रति इस साधारण लौकिक भाव में क्या अध्यात्म भाव भी स्पन्निहित नहीं है ? रत्नसेन दिल्ली से लौटा है। पद्मावती कहती है—

पूजा कौनि देउँ तुम्ह राजा । सबै तुम्हार, आव मोहि लाजा
तन मन जीवन आरति करऊँ । जीव काटि नेवछावरि धरऊँ
पथ मूरि कै दिष्टि बिछावौ । तुम पग धरहु, सीस मे लावौ
पाय निहारत पलकन मारौँ । बरुनी सेति चरन रज झारौँ
छोड़ि गएउ सरवर महुँ मोही । सरवर सुखि गएउ बिनु तोही
केलि जो करत हँस उड़ि गयऊ । दिनिअर निपट सो बैरी भयऊ
सच तो यह है, अध्यात्म-परक चित्रों से पद्मावती भरा पड़ा

है। यही संयोग और वियोग के चित्र पद्मावत की सख् से बड़ी विशेषता है।

वियोग शृङ्गार का तो पद्मावत में और भी विशद चित्रण है। नागमती और पद्मावती दोनों के विरह-चित्रण पद्मावत में मिलेगे। दोनों लगभग एक प्रकार के हैं। कोई विशेष भेद नहीं है। कवि प्रेम-मात्र में भेद नहीं करता। प्रेम चाहे लौकिक हो, या पारमार्थिक, प्रकार-भेद हो सकता है, तत्त्व-भेद नहीं। पद्मावत के सत्तावन खण्डों में पंद्रह खण्ड नागमती और पद्मावती के वियोग (विप्रलम्ब) का चित्रण करते हैं। केवल इसी ऊपरी बात से वियोग-प्रसंगों का महत्त्व दित हो जाता है। नागमती के वियोग और सदेश जैसी चीज तो सारे हिंदी काव्य में नहीं मिलेगी। केवल इन्हीं दो खण्डों को लिखकर जायसी अमर हो जाने। एक-एक दोहा महाविरह का अगाध समुद्र है। नागमती कहती है—

सारस जोरी कौन हरि मारि बियाधा लीन्ह
भुरि भुरि हौ पीजर भई विरह काल मोहिं दीन
जिन्ह घर कता ते सुखी, तिन्ह गारौ औ गर्व
कत पियारा बाहिरै, हम सुख भूला सर्व
परवत समुद अगम बिच, बीहड घन बन ढॉख
किमि कै भैटी कत तुम्ह, ना मोहिं पॉव न पॉख)

भादों की वीथिका में नागमती का विरह-चित्रण देखिये—

भा भादों दूभर अति भारी। कैसे भरौ रैन अधियारी
मन्दिर सून पिउ अनतै बसा। सेज नागिनी फिरि फिर डसा
रहौं अकेलि गहे एक पाठी। नैन पक्षरि मरौं हिय फाठी
चमक बीजु, घन गरजि तरासा। विरह-काल होइ जीउ गरासा
बरसै मघा भकोरि भकोरी। मोर दुइ नैन चुवै अस ओरी

धनि सूखै भरे भादों माहों । अबहुँ न आएन्ह सीचेन्हि नाहा
 पुरबा लागि भूमि जल पूरी । आक जवास भई तस भूरी
 थल जल भरे अपूर सब, धरति गगन मिलि एक
 धनि जोवन अवगाह महँ दे बूडत, पिउ । टेक

कवॉर का महीना आया—

लाग कुवार, नीर जग घटा । अबहुँ आउ, कत ! तन लटा
 तोहि देखे, पिउ ! पलुहै कया । उतरा चीतु, बहुरि करु मया
 चित्रा मित्र लीन कर आवा । पपिहा पीउ पुकारत पावा
 उआ अगस्त, हरित धन गाजा । तुरम पलानि चढे रन राजा
 स्वाति बूँद चातक मुख परे । समद सीप मोती सब भरे
 सरवर सेवरि हँस चलि आये । सारस कुरलरि, खँजन देखाये
 भा परगास, कौंस बन फूले । कत न फिरे, विदेसहि भूले
 विरह हस्ति तन सालै, घाम करै चित चूर
 बेगि आइ, पिउ ! बाजहु, गाजहु होइ सदूर

फिर कातिक आया—

कातिक सरद चद उजियारी । जग सीतल, हौं विरहै जारी
 चौदह करा चौद परगासा । जनहुँ घटै सब धरति अकासा
 तन मन सेज करै अगि दाहू । सब कहँ चद भएउ मोहि राहू
 चहुँ खण्ड लागै अंधियारा । जौ घर नाहीं कंत पियारा
 अबहुँ, निठुर ! आउ एहि बारा । परब देवारी होइ संसारा
 सखि भूमक गावँ अंग मोरी । हौ भुराव बिछुरी मोरी जोरी
 जेहि घर पिउ सो मनोरथ पूजा । मो कहँ विरह सपति दुख दूजा
 सखि मानै तिउहार सब गाह, दिवारी खेलि
 हौं का गावौं कंत बिनु, रही छार सिर मेलि

अगहन मे तो दिन ही काटना कठिन हो गया—

अग्रहन दिवस घटा, निशि बाढी । दूमर रैनि जाइ, किमि गाढी

×

×

×

कापै हिया जनावै सीऊ । तौ पै जाइ होइ सँग पीऊ
 घर-घर चीर रचै सब काहू । मोर रूप-रंग लेइगा नाहू
 पलटि न बहुरा गां जो बिछोइं । अबहूँ फिरै, फिरै रंग सोई
 वज्र अग्नि बिरहिन हिय जारा । मुलुगि मुलुगि दगधै होइ छारा
 यह दुख दगध न जानै कतू । जोवन जनम करै मसमतू
 पीउ सौ कहेहु सँदेसडा, हे भौरा, हे काग
 सो धनि विरहै जरि मुई, तेहि क धुँवा हम्ह लाग

पूस का चित्र देखिये—

पूस जाइ थर थर तन कौपा । सूरुज जाइ लंका, दिसि चोपा

×

×

×

कत कहाँ लागौ ओहि हियरे ? पन्थ अपार, सूझ नहिँ नियरे
 सौर सपेती आवै जूडी । जानहु सेज हिवचल बूडी
 चंकई निमि बिछुरै दिन मिला । हौ दिन राति विरह कोकिला
 रैनि अकेलि साथ नहिँ सखी । कैसे जियै बिछोही पखी
 विरह सकान भयउ तन जाडा । जियत खाइ ओ मुए न छाँडा
 रकत दुरा मासू गरा, हाड भए सब सख
 धन सारस होइ ररि मुई, पीउ समेटहि पंख

माघ आया -

लागेउ माघ, परै अब पाला । विरहा काल भयउ जड काला
 पहल-पहल तन रूई भौपै । हहरि हहरि अधिकौ हिय कौपै
 आइ सूरि होइ तप, पिय आहा । तोहि बिनु जाइ न छूटै माहा
 एहि माह उपजै रस भूलू । तूँ सो भौर, मोर जोवन फूलू
 नैन चुवहि जस महवट नीरू । तोहि बिनु अग लाग सर-चीरू
 टप-टप बूँद परहिँ जस ओला । बिरह पवन जस मारै भोला

केहि क सिंगार को, पढ़रु परोरा । गोउ न हार, रशी होइ डोरा
 तुम बिनु कौ पै धनि हिया, तन तिन उर भा डोल
 तेहि पर विरह जराइ कै, चहै उड़ावा भोल
 फागुन के महीनों की ये पंक्तियाँ तो जायसी के समय में अवध
 के घर-घर में प्रसिद्ध हो गई थी—

फागुन पवन भुकोरा बहा । चोगन सीउ जाइ नहिं सहा
 तन जस पियर पात भा मोरा । तेहि पर विरह देख भुकोरा
 करहि वनस्पति हिए हुनासू । मो कहँ भा जग दून उदासू
 फागु करहि सब चाँचरि जोरी । मोहिं तन लाइ दीन्ह जम होरी
 जौ पै पीउ जरत अस पावा । जरत मरत मोहिं रोष न आवा
 राति दिवस बस यह जिउ मोरे । लक्षौ निहोर कंत अब तोरे
 यह तन जागौ छार कै, कहौं कि ‘पवन उड़ाव’
 यकू तोहि मारग उड़ि परै कत धरै जेहि पाव

चैत देखिये—

चैत बसता होइ धमारी । मोहि लेखे ससार उजारी
 बौरे आम परै अब लागै । अबहुँ आउ, घर कंत सभागे
 सहस भाव फूलों वनस्पती । मधुकर घूमहि सँवरि मालती
 मो कहँ फूल भए सब कौटे । दिस्टि परत जस लागहि चाटे
 फरि जोवन भए नारग साखा । सुआ-विरह अब जाइ न राखा
 धरनि परेवा होइ, पिउ आउ वेगि परु टूटि
 नारि पराए हाथ है, तोहि बिनु पाव न छूटि

वैशाख और जैठ की तपन में यह विरह-व्यथा और भी
 अधिक ज्वाला को प्राप्त होती है—

भा वैशाख तपनि अति लागी । चोआ चीर चँदन भा आगी
 सुरज जरत हिवचल ताका । विरह-विजागि सौह रथ हाका
 जरत बजागिनि करु, पिउ छाहौं । आइ बुझाउ, अंगारह माहौं

तोहि दरसन होइ सीतल नारी । आइ आगि तें करु फुलवारी
 कँवल जो बिगसा मानसर बिनु जल गएउ सुखाइ
 अबहुँ बेलि फिरि पलुहै जो पिउ सीचै आइ
 जेठ जरत जग, चलै लुवारा । उठहि बवण्डर, परहि अँगारा
 अधजर भइउँ, मसु तन सूखा । लागेउ विरह काल होइ भूखा
 × × ×

गिरि, समुद्र, ससि, मेव, रत्रि सहि न सकहि-वह आगि
 मुहम्मद सती सराहिये, जरै जो अस पिउ लागि

नागमती का यह विरह-वर्णन भले ही ऊँडापोदात्मक हो, भले ही आधुनिक मनोवैज्ञानिक दृष्टि पर वह पूरा नहीं उतरे, परंतु इसमें ऐसी-ऐसी उक्तियाँ हैं जो 'नावक के तीर' की तरह मन में चुभ जाती हैं। कोई पक्षी नागमती की बात रत्नसेन तक कैसे ले जाय—

जेहि पछी के नियर होइ कहै बिरद कै बात
 सोई पछी जाइ जरि, तरिवर होइ निरवात

रत्नसेन का वह देश भी ऐसा कैसा है जहा पावस नहीं, बसंत नहीं, कोकिल नहीं, पपीहा नहीं—

नहि पावस ओहि देसरा, नहि हेवंत बसन्त
 ना कोकिल न पपीहरा, जेहि सुनि आवै कंत

अंत में आधी रात में कोई पछी बोल उठता है। नागमती को रोते-कलपते देख वह पूछता है—

तू फिरि फिरि दाहै सब पाँखी । केरि दुख रैन न लावसि आँखी
 नागमती उससे प्रिय का संदेश कहती है—

पदमावति सौ कहेउ विहंगम । कंत लोभाइ रही करि सगम
 तू घर घरनि भई पिउ-हरता । मो कहँ दीहेसि जय श्री बरता

हमहूँ बिअदि सँग ओहि पीऊ । आपहु पाइ जानु पर-जीऊ
 अवहु मया करु, करु जिउ फेरा । मोहि जियाउ कंत देइ मेरा
 मोहि भोग सौ काज न, बारी । सौह दीठि कै चाहनहारी
 सवति न दोसि नू बैरिनि, मोर कंत जेहि हाथ
 आनि मिलाव एक बेर, तीर पाँय मोर माथ
 नागमती सपत्नी से ईर्ष्या भी नहीं रखेगी—इतना बड़ा
 शक्तिदान भारतीय नारी ही कर सकती है । जायसी ने
 मुसलमान होते हुए भी युग-युग लांछित भारतीय नारी की
 हृदय की बात कही, इतनी सहानुभूति से उसे समझा, इसके
 लिए वह धन्यवाद के पात्र हैं । सचमुच, नागमती हिंदी काव्य
 की निरुपमेय पात्री है । उसने भारतीय नारी का पूर्णतः प्रति-
 निधित्व किया है ।)

पद्मावती के काम-विकार का एक चित्र देखिये । अभी उसे
 रत्नसेन का परिचय नहीं मिला है—

नींद न परै रैनि जौ आवा । सेज केवंच जानु कोइ लावा
 दहै चद औ’ चंदन चीरु । दगध करै तन बिरह गंभीरु
 कल्प समान रैनि तेहि बाढी । तिल तिल भर जुग जुग जिम गाढी
 गहै बोन यकु रैनि विहाई । ससि वाहन तह रहै ओनाई
 नि वनि सिध डरै है लागै । ऐसेहि बिथा रैनि सब जागे
 से धनि विरह पतंग भइ, जरा चहै तेहि दीप
 कत न आव भिरिंग होइ, का चदन तन लीप
 से परिचय होने पर स्पष्ट रूप से वह विरहिणी हो
 । अनेक भारतीय परंपरा में स्वीकृत उपमानों के द्वारा
 पद्मावती की विरह-व्यथा का वर्णन करता है—

बनु जल मीन तलफ जल लीऊ । चातकि भइउ कहत पिउ पिऊ
 जारिउ बिरह जस दीपक बाती । पथ जोहत भइ सीप सेबती
 डाढि डाढि जिमि कोइल भई । भइउ चकोर नींद निसी गई

परन्तु सूफी जायसी जगह-जगह परोक्ष प्रेम इंगित करने से नहीं चूकते। पद्मावती-रत्नसेन की कथा उनके लिए उस परमात्मा के प्रेम की कथा है जो काया (देह) में निवास करता है, जा पुतली की तरह आँख में समाया हुआ है। जायसी इस बात का पाठक के सामने रखना भूलते नहीं। वह यह नहीं चाहते कि लोग उनको कहानी का लोककथा मात्र समझ लें। कथा से बड़ी—बहुत बड़ी—चीज वह पाठक को देना चाहते हैं—

काया उदधि चितव पिय पाहों। देखौ रतन मो हिरद मँहा
जनहँ आहि दरपन मोर हीया। तहि मँहँ दरस दिखावै पीया
नैन नियर पहुँचत सुठि दूरी। अब तेहि लागि मरौँ मै भूरो
पिउ हिरदय मँहँ, भेंट न होही। कोरे मिलाव कहौ केहि रोई ?

साथी आधि निआधि जो सकै साथ निरवाहि
जो जिउ जारे पिउ मिलै भेदु रे जिउ जरि जाहि

इस प्रकार के गहनतम वेदनात्मक भावों से नागमती और पद्मावती के विरह-वर्णन भरे पडे हैं। प्रेम के उभय पक्ष (संयोग और विप्रलंभ) सूफी साधकों के लिए साधना थे। वियोग में साधक 'प्रेम की पीर' की अनुभूति को जाग्रत करता था और 'उस' के विरह में इसी तरह पागल रहना चाहता था जैसे पद्मावती के विरह में रत्नसेन। संयोग में साधक ब्रह्म से कल्पनात्मक मिलन का आनंद वर्णन करता था। इसी से पद्मावती की प्रेम-मिलन और विरह की कोई भी उक्ति ऐसी नहीं जिस पर कवि की स्वानुभूति की छाया न हो। नागमती और पद्मावती प्रकारान्तर से सूफी जायसी का प्रेमाकुञ्ज अंतर है। इसी तरह रत्नसेन में चाहे प्रतीक रूप में कुछ हो, उसका प्रेमी व्यक्तित्व स्वयं कवि की रहस्यमयी साधना ने गढ़ा है। इस प्रकार पद्मावती केवल कथा-काव्य न रहकर साधना-

ग्रंथ रह जाता है। कृष्णभक्ति की साधना जिस प्रकार ‘सूर-सागर’ में समाविष्ट है, तुलसी की रामभक्ति की साधना जैसे ‘रामचरितमानस’ की पक्ति-पंक्ति में घुन गई, उसी तरह जायसी की प्रेम की साधना ‘पद्मावत’ के इन तीन पात्रों के भीतर से जागरूक है। तीनों ग्रंथ कथा-काव्य हैं, परंतु यदि सूरसागर और रामचरितमानस कथा से अधिक साधना (कवि की व्यक्तिगत निष्ठा) को प्रगट करते हैं, तो इस जायसी के पद्मावत को भी केवल मात्र कथा-काव्य कह कर फूँ से उड़ा नहीं सकते ।)

इस प्रकार पद्मावत में व्यापक रूप से शृङ्गार की प्रतिष्ठा है। यह रस एक ही साथ लौकिक और अलौकिक है। कथा में जो रतिभाव है, वही साधना में माधुर्य (अध्यात्म) भाव परंतु शृङ्गार के अतिरिक्त अन्य रसों का निरूपण भी पद्मावत में हुआ है। करुण, वात्सल्य, वीर, शांत और वीभत्स के अनेक प्रसंग कथा-प्रसंग के कारण ग्रन्थ में आ गये हैं। जायसी इन सभी रसों के निरूपण में सफल है। शृङ्गार के बाद करुण ही ऐसा रस है जिसमें जायसी ने सब से अधिक आसक्ति है। विप्रलभ शृङ्गार के अंतर्गत इस रस का सुन्दर निरूपण हुआ है। करुण रस के दो दृश्य देखिये। रतनसेन चित्तौड़गढ़ से विदा हो रहा है—

रोवत माय, न बहुरत बारा । रतन चला, घर भा अधियारा
 बार बार जो राजहि रता । मो लै चला, सुआ परवता
 रोवहि रानी तजहि पराना । नोचहि बार, करहि खरिहाना
 चूरहिं गिउ-अमरन, उर हारा । अब का पर हम करब सिगारा
 जा कहँ कहहि रहमि कै पीऊ । सोह चला, काकर यह जीऊ
 मरै चहहि, पै मरे न पखहि । उठै आगि, सब लोग बुभावहि

×

×

×

घरी एक सुठि भएउ अँदोरा । पुनि पाछे बीता होइ रोरा
 दूटे मन नौ मोती, फूटे दस मन काच है
 लीन्ह समेट अब अबरन, होहगा दुख कर नाच
 पद्मावति सिहल से विदा हो रही है—

रोवहिँ मातु पिता औ' भाई । कौउ न टेक जो कत चलाई
 रोवहिँ म नैहर सिघला । लेह बजाह कै राजा चला
 तजा राज रखन, का केहू ? छौँडा लक विभीषण लेहू
 भरी मखी सब भेटत फेरा । अत कत सौ भएउ गुटेरा

× × ×

कोउ काहू कर नाहि निआना । मया मोह बौधा अरुधाना

कचन कया सो रानी रहा न तोला मँसु ।

कंत कसौटी घालि कै चूरा गढे कि हँसु ॥

वात्सल्य का निरूपण मुख्यतः गोरा-बादल के प्रसंग में है । युद्ध
 में जाते समय बादल की माँ बादल के संबन्ध में चिन्ता करती है—

बादल केरि जसौवै माया । आह गहेसि बादल कर माया
 बादलराम ! मोर तुह बारा । का जानसि कस होई जुभारा

जहाँ दलपती दलि मरहिँ तहाँ तोर का काज ।

आंजु गवन तोर आवै, बैठि मातु सुखराज ॥

परंतु वीर बालक गर्व के साथ कहता है—

मातु, न जाननि बादल आदि । हौ बादला सिंह रनवादी
 आगे के प्रसंगों में कवि ने गोरा बादल के वीरत्व का बहुत सुन्दर
 चित्रण किया है । यद्यपि यह वर्णन उत्प्रेक्षाओं से भरा हुआ है,
 अतः काल्पनिक है, तथापि चारण काव्य की परम्परा से वह
 थोड़ा भिन्न है; अतः अभिन्नदनीय है । गोरा की एक गर्वोक्ति
 देखिये—

हैं कहिए धौलागिरि गोरा । टरौं न टारे, अंग न मोरा
 सोहिल जैसा गगन उपराहीं । मेघ-घटा मोहि देखि बिलाहीं
 सहसौ सीस सेस सब लेखो । सहमौ नैन इन्द्र सम लेखौं
 चारिउ भुजा चतुरभुज आजू । कस न रहा और को साजू
 हो होइ भीम आजु रन गाजा । पाछे घलि डूंगवै राजा
 होइ हनुवत जमकातर ठाहौ । आजु स्वामि सॉकरे निबाहौ

होइ नल नील आजु हौं देहुं समुद महुं मेड ।

कटक साह कर टेकौ, होइ मुमेरु, रन बेड ॥

शांतरस का आश्रय भाव निर्वेद है । स्थान-स्थान पर वैराग्य की उक्तियों में इस रस का आभास मिलता है । वीर रस के प्रसंगों में कुछ पंक्तियाँ वीभत्स की भी आ जाती हैं । वस्तुतः जायसी के पद्मावत का प्रधान रस शृङ्गार है । उसकी विशेषता यह है कि वह उभयनिष्ठ है । (एक ओर वह पद्मावत, नागमती और रतनसेन के मिलन-त्रियोग को चित्रित करता है, दूसरी ओर वह सूफी सालिक की हृदय-स्वच्छता और ‘कल्व’ (प्रज्ञा) को प्राप्ति को प्रक्रियाओं को स्पष्ट करता है । वास्तव में लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रेमपत्नी की दृष्टि से पद्मावत अत्यंत उच्चकोटि की रचना है और संसार के सर्वश्रेष्ठ प्रेमकथा-काव्यों में उसका स्थान होगा । उसमें बहुत कुछ नीरस है, बहुत कुछ वस्तु-निरूपण या नामकथन-मात्र है, बहुत कुछ प्राचीन साहित्य-परंपरा से उधार लिया गया है, फिर बहुत कुछ कुहचि-वर्द्धक है, परंतु इस पर भी प्रेम, मिलन, विरह और प्रेमी की निष्ठा के संबंध में न इतनी मार्मिक उक्तियाँ अन्य स्थान पर मिलेंगी, न इतना सुन्दर चित्रण । शृंगार रस की दृष्टि सूरसागर के बाद पद्मावत का ही नाम लिया जायगा ।)

वर्णन

ऊपर हमने नारी-सौन्दर्य-वर्णन और प्राकृतिक वर्णन पर विचार किया है। अब हम सामान्य वर्णन की बात लेंगे। कथा-काव्य में वर्णन की ही प्रधानता होती है और नारी और प्रकृति तक ही सार वर्णन समाप्त नहीं हो जाते। इसी से अन्य अनेक प्रकार के वर्णनों पर भी विचार करना पड़ता है।

जायसो ने सिंहलद्वीप के गढ़, वित्तौड़गढ़ और नगर का विशद वर्णन किया है। इन वर्णनों से हमें उनके बहुज्ञान और उनकी तीव्र पर्यायवेक्षण शक्ति का पता लगता है। हाटों में अनेक प्रकार की सामग्री भरी पड़ी है। अनेक प्रकार के साधु-संन्यासी मठों और मंडपों में बैठे हैं। पनिहारियों के सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ कवि थकता नहीं। नगर के हाट में हीरा-मोती का व्यवसाय होता है। समाज के अनेक वर्णों से कवि का निकट परिचय जान पड़ता है। कवि वेश्या, मालिन, गंधी, पण्डित, नाच-कूद वाले, चिरहटों, पाखंडियों, नाटक, चेटक कलाविशारदों, ठगों, व्यापारियों और ग्राहकों का भी वर्णन एवं उल्लेख करता है। जान पड़ता है, कवि का ज्ञानक्षेत्र नगर की नीचे की जनता तक ही सीमित है। राजदरबार तक उसकी पहुँच नहीं है। इसीसे उसके वर्णनों में ऐश्वर्य या भावुकता का विलास नहीं है। कवि जिस वातावरण में रहता है, वही वातावरण उसकी रचनाओं को ढक लेता है। इसी से आज के नागरिक पाठक को जायसी के वर्णन अरुचिकर होंगे। अधिकांश वर्णन केवल नाम-कथन मात्र हैं जैसे संन्यासियों की यह सूची—

मठ मडप चहुँ पास सँवारे। तपा जपा सब आसन मारे
कोइसु ऋषीश्वर कोइ संन्यासी। कोई राजमती बिसवासी
कोई ब्रह्मचार पथ लागे। कोइ सो दिगम्बर बिचरिहँ नोंगे

कोई सु महेसुर जङ्गम जतो । कोइ एक परतै देव सती
 कोइ सूरसनी कोई जोगी । कोइ निरास पथ बैठे वियोगी
 सेवरा, खेवरा, बानपर, सिध साधक, अवधूत
 आसन मारे बैठे सब जारि आतमा भूत
 हाथियो का वर्णन भी कुछ इसी प्रकार है—

हरित लिंघली बंधे वारा । जनु सजीव सब ठाढे पहारा
 कौनौ सत पीत रतनारे । कौनौ हरे, धूम औ कारे
 धर नहिं बरन गगन जस मेवा । औ तिन्ह गगन पोठि जनु सेवा
 धरती भारन अँगवै पॉव धरत उठ हालि ।
 कुसम टुटे, मुंह फाटै तिन्हह तिन्ह के चालि ॥

घोड़ो के सम्बन्ध मे तो कवि का ज्ञान अगाव है । उन्होने घोड़ो के अनेक प्रकारो का वर्णन किया है । परंतु इस नाम-माला के बीच कहीं-कहीं वह बहुत ही सुन्दर सजीव चित्र उपस्थित कर सका है जैसे—

फिर न रहहिं रिस लोह चबाहीं । भोजहि पूँछ सीस उपराही
 इससे स्पष्ट है कि घोड़ो के सम्बन्ध मे उसको जानकारी केवल शास्त्रीय ही नहीं है । इसी प्रकार वेश्याओ के मनोविज्ञान और उनके हावभाव को उसने सजीव ढंग से उतारा है—

मुख तमोल, तन चीर कुसुंभी । कानन रुनक जडाऊ खभी
 हाथ बीन सुनि मिरिग मुक्काहीं । नर मोहहिं सुनि, पग न जाहीं
 भौह धनुष, तिन्ह नैन अहेटी । मारहिं बान सान सौं फेरो
 अलक-कपोल डोल हसि हेहीं । लाइ कटाक्ष मारिजिउ लेहीं
 कुच कचक जानौ जग सारी । अंचल देहिं सुमखहिं डारी
 केत खलार हार तेहि पास । हाथ भारि उठि चलहिं निरासा

इस प्रकार के वर्णनों में साहित्य की मात्रा की बहुत कमी है । रस-दृष्टि भी अधिक नहीं है । ऊपर के वर्णन में

नारी-रूप के वर्णन के लिये जो उपमान चुने गये हैं, वह पूर्णतः परंपरा-प्राप्त हैं। उनमें कोई नवीनता नहीं। विशेषता केवल यही है कि इस्लामी साहित्य-परंपराओं का जरा भी ऋण इस काव्य पर नहीं है। वह सौ-सौ शृङ्खलाओं से भारतीय साहित्य-परंपरा से बँधा हुआ है।

युद्ध का वर्णन भी जायसी ने विशद रूप से किया है, परंतु ऐसा नहीं जान पड़ता कि उन्होंने युद्ध अपनी आँखों से देखा है। प्राचीन साहित्य और जनश्रुति में युद्ध का जो स्वरूप था, उसे ही कल्पना के सहारे विकसित किया गया है। युद्ध के सारे उल्लेख पद्मावत की कथा के उत्तरार्द्ध में हैं। चार युद्धों का विशेष वर्णन है—अलाउद्दीन और रतनसेन का युद्ध, गोरा-बादल और अलाउद्दीन की लड़ाई, रतनसेन देवपाल के युद्ध। गोरा-बादल और अलाउद्दीन के युद्ध दो बार आये हैं। अधिकांश युद्धवर्णन कल्पनात्मक हैं और उसमें उत्प्रेक्षा अलंकार का व्यापक प्रयोग हुआ है। सेना का यह वर्णन देखिये—

आवै डोलत सरग पतारा । कोंपे धरति, न अगवै सारा
दूटहिं परबत मेरु पहारा । होइ चक चूल उड़ाहि तेहि द्वारा
सत-खड धरती होइ षटखण्डा । ऊपर अष्ट भए बरहण्डा
जेहि पथ बल ऐरावत हाथी । अबहुँ सो डगर गगन मह आथी
औ जइं जांमि रही वह धूरी । अबहु बसै जो हरिचद-पुरी
गगन छपान खेह तस छाई । सूरज छिपा, रैनि होई । आई
कल्पना की और भी ऊँची उड़ान भरता हुआ कवि कहता है
कि सेना द्वारा उड़ी धूल के कारण दिन के स्थान पर रात हो गई
और रात के सारे व्यापार चलने लगे—

दिनहिं राति अस पटी अचाका । मारवि अस्त चन्द्र रथ हॉका
मन्दिर जगत दीप परगसे । पथी चलत बसेरै बसे

दिन के पखि चरत उड़ि भागे । निसि के निसरिचरै सब लागे
 कँवल सकेता, कुमुदिन फूली । चक्रवा बिजुरी, चकई फूली
 यहाँ तो कल्पना का विलास कुछ ठीक भी चलता है । परंतु
 आगे की पंक्तियों में संयम कवि के हाथ से निकल जाता है और
 अतिशयोक्ति इतनी उच्छृङ्खल हो जाती है कि कवि की कल्पना
 खिलवाड़ लगने लगती है—

चला कटक-दल ऐम अपूरी । अगिलहि पानो, पिञ्जलहि धूरी
 महि उजरी, सागर सब सूखा । बनखड रहेउ न एकौ रूखा
 गिरि-पहार सब मिलिगे माटी । हस्ति हेराहिं तहाँ होइ चाँटी

कल्पना का यह असंयमित विलास मसनवी काव्य की एक
 विशेषता है । विषय की अलौकिकता की ओर इशारा करने में इससे
 थोड़ी-बहुत सहायता अवश्य मिल जाती है, परन्तु वर्णित विषय
 का कोई रूप इसके द्वारा उपस्थित नहीं होता । कल्पना के
 विलास की दृष्टि से इस प्रकार के साहित्य को परवर्ती रीतिकान्य
 से तुलना की जा सकती है ।

गोरा-बादल के युद्ध में कवि उत्प्रेक्षाओं की ऋड़ी लगा
 देता है—

ओनवत आह सेन सुलतानी । जानहुँ परलय आव तुलानी
 लोहे सेन सूफ सब चारो । तिन एक कह । न सूफ उघारी
 खड़ग फोलाद तुरुक सब काड़े । धरे बीजु अस चमकहिं ठाड़े
 पीलवान गज पेले बाके । जानहुँ काल करहिं दुइ फाँके
 जनु जमकात करहि सब भवौं । जिउलेह चहहि स रग असवौं
 सेल सख जनु चाहहि डसा । लेहि काठि जिउ मुख बिष-बसा

यही नहीं, अस्त्र-शस्त्रों का वर्णन करने में भी कवि कल्पना
 को ही प्रधानता देता है और अतिशयोक्तियों की ऋड़ी लगा देता
 है—

चलीं कमानें जिन्ह मुख गोला । आवहि चली, धरतिसबडोला
 लागे चक्र बज्र के गढ़े । चमकहि रथ सोने सब मढे
 तोपों का आविष्कार अलाउद्दीन खिलजी के समय तक नहीं
 हो पाया था । बाबर ने पहली बार भारतभूमि में तोपों का
 प्रयोग किया । कदाचित् शेरशाह भी इस नये अस्त्र से परिचित
 हो गया था । जायसी ने तोपों का भी अतिशयोक्ति-पूर्ण वर्णन
 किया है—

तिन्ह पर विषम कमानें धरिं । साचे अष्टधानु कै ठरी
 सौ-सौ मन वै पीयहिं दारू । लागहिं जहाँ सो दूट पहार
 माती रहान्ह रथन्ह पर परी । सत्रुन्ह यहँ ते होदि उठि खरी
 जौ लागै संसार न डोलहिं । होइ भुइकप जीभ जौ खोलहिं
 सहस सहस हस्तिन्ह कै पौती । खींचहि रथ, डोलहि नहिं माती
 कहौ सिगार जैम वै नारी । दारू पियहिं जैसि मतवारी
 उठै आगि जौ छाडहि सोंसा । धुआँ जौ लागै जाह अकासा
 सेदुर आगि सीस उपराहीं । षहिया तखन चमकत जाहीं
 कुच गोला दुह हिरदय लाए । अञ्जल धुजा रहहिं छिटकाए
 रसना लूक रहहि मुख खोले । लका जरै सी उनके बोलै
 अलक जञ्जीर बहुत जिय बोधे । खींच हिहस्ती दूटहिं कोंधे

तिलक पलीता पाथे, दसन बज्र के बान

जेहि हेरहि तेहि मारहिं, चुरकुस करहिं निदान

नायिका रूप में तोप जैसे भयंकर अस्त्र का वर्णन विचित्र
 बात है, परंतु हमें यह समझ रखना चाहिये कि उस
 समय के साहित्य में नारी के माध्यम से संसार को देखने
 की परिपाटी उतनी ही चलती थी, जितनी रीतिकाल और
 अत्याधुनिक काल में । इसीसे इन तीनों युगों के काव्य
 को हम एक श्रेणी में रख सकते हैं । मूल प्रवृत्तियों में

अनेक विरोध होते हुए भी समानताएँ भी कम नहीं मिलेंगी —

१—कल्पनातिरेक

२—साहित्य-परिपाटी के विरुद्ध एक नवीन काव्य-सृष्टि

३—नारी के प्रति भावुकतामय दृष्टि

४—प्रकृति के प्रति रहस्यवादी और अतिरंजित दृष्टिकोण

५—शैली की दृष्टि से वैचित्र्य की ओर विशेष ध्यान

वास्तव में हम सूफी काव्य को रोमांटिक काव्य कह सकते हैं। प्राचीन क्लासिकल परंपरा से यह काव्य एकदम अलग है। इसमें न कल्पना का संयम है, न पग-पग पर प्राचीन साहित्य-संपत्ति की ओर मुड़ कर देखा गया है।

जायसी के वर्णनो को हम कई श्रेणी में रख सकते हैं :

(१) नाम-कथन मात्र जैसे कुछ खण्डों में कवि घोड़ों की सूची मात्र दे देता है—

चले पथ, बेसर सुलतानी । तीख तुरंग बॉक कनकानी
कारे, कुमइत लील मुपेते । खिग, कुरंग, बोज, दुर केते
अबलक, अरबी, लखी, सिराजी । चौघर चाल, समँद भल,ताजी
किरमिज, नुकरा, जरदे, भले । रूपकरान, बोलसर चले
पँच कल्यान, सँजाब बखाने । यहि सायर सब चुनि चुनि आने
मुशकी औ' हिरमिजी इराकी । तुरकी कहे भोथार कुलाकी
बिखरे चले जो पँतिहि पँती । बरन बरन औ' भँतिहि भँती

इस प्रकार के अनेक वर्णनो से पद्मावत भरा पड़ा है। हाथी, जौनार, षटरस व्यंजन, अलाउद्दीन और रतनसिंह की ओर के वीरगण और राजे इत्यादि अनेक नामोल्लेख-प्रसंग आते हैं। चाहे इससे कवि का बहुज्ञान प्रकाशित हो सके, इसमें संदेह नहीं कि श्रेष्ठ काव्य में इस प्रकार के नामकथन-मात्र का कोई महत्व नहीं। पद्मावत का बहुत बड़ा अंश नीरस

नामोल्लेख मात्र है। इन अंशों के हटाने से न काव्य-प्रवाह में बाधा पड़ती है, न कवि की प्रतिभा पर आघात होता है। रत्नसेन और अलाउद्दीन के भोज इस प्रकार के सब से लंबे वर्णन हैं। रत्नसेन के भोज में कवि भात, मालर, मांडे, लुचुई, सोहति, खण्डरा, बचका, हुमकौरी, बरी, कोहँडौरी, संधाने, दूध, दही इत्यादि लोक-प्रसिद्ध भाज-पदार्थों का वर्णन करता है और अल्लाउद्दीन वाले भोज में अनेक प्रकार के मास (छागर, मेढ़ा, हरिन, रोभ, लगना, चीतर, गोहन, मोख, ससां, तीतर, बटई, लवा, सारस, कूज, पुछार, परेवा, पंडक, खेहा, गुडरू, बगेरी इत्यादि) मछली (रोहू, सिधरी, सौरो, टेंगरा, सींगी, भाकुर, पथरी, बनगरी), पूड़ियो और चावलों आदि का उल्लेख करता है। मनोरंजन और पाकशास्त्र की ऐतिहासिक खोजों की दृष्टि से यह लंबी सूची चाहे जितनी महत्वपूर्ण हो, इसमें संदेह नहीं कि यह काव्य किसी भी प्रकार नहीं है।

(२) रोमांटिक वर्णन जिनमें कवि अतिशयोक्ति और ऐश्वर्यमयी कल्पना का प्रयोग करता है जैसे सिंहलगढ़ के महल, रनिवास और राजद्वार का वर्णन कवि इस प्रकार करता है—

साजा राजमदिर कैलास । सोने कर सब धरति अकास
सात खण्ड धौराहर साजा । उहै संवारि सकै अस राजा
हीरा ईट कपूर गिलावा । औ नग लाइ सरग लेइ आवा
जावत सबै उरेह उरेह । भाति भाति नग लाग उबहे
भा कटाव अस अनबन भौंती । चित्र कोटि । कै पातिहि पाती
लाग खम-मनि-मानिक जरे । निसदिन रहिं दीप जनु बरे
देखि धौराहर कर उजियारा । छुपि गये चोद सूरुज औ तारा
इस प्रकार के अत्यंत अतिशयोक्तिपूर्ण वैभव के वर्णन हिन्दी-काव्य की परंपरा से एकदम अलग हैं। कल्पना के बल से

लेखक एक अलौकिक ऐश्वर्य-देश के चित्र उपस्थित करता है जहाँ की धूप हमारे संसार की धूप से अधिक तेज है और जहँ की चाँदनी में हमारे यहाँ की चाँदनी से अधिक माधुर्य है। सिंहल, चित्तौड़, अश्व-गज, प्राकृतिक सौन्दर्य—कवि चाहे जो कुछ वर्णन कर रहा हो, वह ऐश्वर्यमयी मूर्तिमत्ता और कल्पना के सहारे उसे साधारण द्वीप नगर या पशु-पक्षी के कुछ ऊपर, कुछ अधिक, विचित्र चित्रित करता है। इसीसे हम सूफी काव्य को हिन्दी का पहला रोमांटिक काव्य कह सकते हैं। इसी प्रकार सिंहल की राज-सभा का वर्णन कवि इस प्रकार करता है—

राजसभा पुनि देखि बईठी । इन्द्रसभा जनु परि गै डोठी
धनि राजा असि सभा सवारी । जानहु फूलि रही फुलवारी
मुकुट बाधि सब बैठे राजा । दर निसान नित जिन्हके बाजा
रूपवंत, मनि दिपै लिलार । माथे छात, बैठे सब पारा
मानहु कँवल सरोवर फूले । सभा का रूप देखि मन भूले
पान कपूर मेद कस्तूरी । सुगध बास मरि रही अपूरी
मोँझ ऊँचे इन्द्रासन साजा । गधर्वसेन बैठ तहँ राजा
छत्र गगन लागि ताकर, सूर तवै जस आप
सभा कँवल अस विगसै, माथे बडा परताप

इस प्रकार के वर्णन आधुनिक कविता के रोमांटिक अंशों से मेल खाते हैं। साहित्य में इनका विशेष स्थान है।

(३) इनके अतिरिक्त कुछ वर्णन ऐसे हैं जिनमें कवि का मूल उद्देश्य आध्यात्मिक है या जिन पर वह आध्यात्मिक रूपक का आरोप करना चाहता है। ऐसे वर्णन अनेक हैं और इन स्थलों को ‘अन्योक्ति’ कहा जा सकता है। सिंहलद्वीप वर्णन खण्ड में कवि काया को गढ़ का रूपक देता है। जैसे काया के बीच में ही ‘काल्ब’ (प्रज्ञा) का निवास है, उसी प्रकार सिंहल द्वीप (गढ़) में पद्मावति है। कवि कहलाता है—

गढ तस बाक जैसि तोर काया । पुरुष देखि औही कै छाया
नौ पौरी तेहि गढ मफियारा । औ तह फिरहि पॉच कोटवारा
दसवे दुवार गुपुत एक ताका । अगम चढाव, बार सुठि बॉका

× × ×

गढ तर कुण्ड, सुरग तेहि माहा । तहँ वह पथ कहौ तोहि पाहा
कवि का तात्पर्य तत्र स्पष्ट हो जाता है जब वह दसवे द्वार पर
रखे राज-घड़ियाल के बजने को बात उठाता है और उससे
जीवन की क्षणभंगुरता की सूचना देना चाहता है—

नव पौरी पर दसवँ दुआरा । तेहि पर बाज राज-वरियारा
घरी मो बैठि गनै घरियारी । पहर पहर सो आपनि बारी
जबो घरी पूजी तेहँ मारा । घरो घरी घरियार पुकारा
परा जो डाड जगत सब डाडा । का निचिंत माटी कर भाडा
तुम्ह तेहि चाक चढे हो काचै । अएहु रहै न फिर कोई दाचै
घरी जो भरी घरी तुम्ह आऊ । का निचिंत होइ सोउ-बटाऊ

वास्तव में आध्यात्मिक साधना की दृष्टि से ये स्थल सब से
महत्वपूर्ण हैं और इनकी उपेक्षा करने पर हम कवि के आध्या-
त्मिक विचारों के साथ अन्याय ही करेंगे ।

(अनेक सामाजिक कृत्यों के वर्णन भी पदमावत में आये
हैं । विवाह, भोज और जौहर के विशद वर्णन मिलेंगे । ये
सब हिन्दू सामाजिक कृत्य हैं और इनसे कवि के विशाल ज्ञान-
भांडार और उसकी अनन्त सहानुभूति का पता चलता है ।
परंतु कवि ने हिन्दू सामाजिक कृत्यों के सम्बन्ध में जो ज्ञान
है, वह राजमहलो से नहीं, साधारण हिन्दू गृहस्थों से । जान
पड़ता है, जायसी की पहुँच समाज के ऊँचे वर्गों में नहीं थी
और उनकी रुचि भी विशेष परिमार्जित नहीं थी । वह नगर

की सामान्य गली-कूचों की विशेषताओं से परिचित हैं, हाथी-घोड़ों और भोजन के षटरस व्यंजनो की पूरी परी सूची उन्हें कंठस्थ है, परंतु उनके ऐश्वर्य और विलास के चित्र काल्पनिक है। उनसे कवि का सहज परिचय नहीं जान पड़ता।)

परंतु जायसी साधारण लोककाव्य तो लिख नहीं रहे थे। लोक-रस (कथा-रस) को लेकर वह चल रहे थे, परंतु वह कथा-रस से कुछ आगे बढ़कर पद्मावती-रतनसेन को रूपक के रूप में भी प्रतिष्ठित करना चाहते थे। इसी से वे पाणिग्रहण के अवसर पर सांकेतिक शब्दों के द्वारा आध्यात्मिक अर्थों की पुष्टि करते हैं। पद्मावती चोद है, रतनसेन सूरज—

चोद के दीन्ह जयमाला । चोदि आगि सूरज गिउ घाला
सूरज लीन्ह, चोद पहिराई । हार नखत तरइन्ह स्यो पाई

इस प्रकार की सांकेतिकता जायसी को विशेष प्रिय है और जायसी के काव्य में हम बार बार उसका परिचय पाते हैं।

जो हो, इसमें संदेह नहीं कि पद्मावत वर्ण-प्रधान कथा-काव्य है। ‘भसनवी’ का यही रूप है। उसे महाकाव्य नहीं कहा जा सकता। महाकाव्य में विषय की जो उदात्त स्थापना होती है, शैली का जो समय होता है, पात्रों की जो विशिष्ट रूपरेखा होती है, वह ‘पद्मावत’ में नहीं है। वैसे चाहे कथा के साथ महाकाव्य में वर्णित लगभग सारे ही प्रसंग पद्मावत में आ जाते हैं, केवल इसी एक आधार पर हम उसे महाकाव्य नहीं कह सकते। न शैली की दृष्टि से, न विषय की दृष्टि से। वह एक वृहद् कथा-ग्रन्थ मात्र है जिसमें हठयोग और सूफी साधना का रूपक घटाया गया है। हठयोग की धारा १००० ई० से जायसी के समय (१६वीं शताब्दी) तक बराबर बढ़ रही

थी। तुलसी ने ३०-३५ वर्ष बाद 'रामचरितमानस' में 'अलख' जगाने वाले, मुद्रा-शृङ्गी धारण करने वाले योगियों को व्यंग से याद किया है। जायसी की महत्ता यही है कि उन्होंने ऐसा नहीं किया। उन्होंने हठयोग और सूफीमत की समानता की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया और कदाचित् योग के माध्यम से सूफी विचारावली का प्रचार किया। रतनसेन जोगी बन जाता है, पद्मावति-प्राप्ति के लिये जो बाधाये उपस्थित होती हैं, वे काया-गढ़ के भीतर योगी की आंतरिक बाधाओं से अधिक भिन्न नहीं हैं। पद्मावति जोगसिद्धि का भी प्रतीक हो सकती है। परंतु जैसा हमने पिछले पृष्ठों में बताया है, रूपक-कोष देकर जायसी ने यह स्पष्ट कहा है कि वे सूफी-साधक हैं, हठ-योगी 'जोगी' नहीं। परंतु वास्तव में मध्ययुग में जोगियों और सूफियों की विचारा-धारा में बहुत आदान-प्रदान रहा है। संभव है, यह आदान-प्रदान अरब और ईरान में ही आरंभ हो गया हो, परंतु १००० ई० के बाद स्वयं भारतभूमि में सिध, मुलतान और पंजाब में योगी-पीठ थे और सूफी-साधक इनसे अवश्य परिचित थे। पंजाब का 'जोगी बालानाथ का टीला' जायसी के समय भी प्रसिद्ध था और पद्मावत में उसका नाम आया है। अतः यह स्पष्ट है कि दोनों धार्मिक धाराओं में व्यापक रूप से आदान-प्रदान चलता रहा और जायसी का पद्मावत सूफी विचारावली में जोगियों की परिभाषाओं और उनकी कायानिष्ठ साधनाओं को समेट कर चलता है। शिव, पार्वती, नारद—ये सब जोगी साहित्य में भी मिलते हैं। पद्मावत में यही रतनसेन को निरंतर आश्वासन देते हैं और आड़े समय उसके काम आते हैं। इस समन्वय की दृष्टि से देखने पर पद्मावत के पूर्वार्द्ध की महत्ता और भी बढ़ जाती है।

की दृष्टि से जायसी का पद्मावत हिन्दी का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। भाषा की दृष्टि से उसका ऐतिहासिक महत्व तो है ही, सूफी साधना और स्वच्छंदतावादी काव्य के नाते भी वह महत्त्वपूर्ण है। संभव है, हम आज उसे वह महत्व नहीं दे, जो कुछ वर्ष पहले आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ‘जायसी-ग्रन्थावली’ की भूमिका में उसे दिया था, परंतु प्राचीन हिन्दी काव्य के इने-गिने प्रौढ़ ग्रन्थों में हम जायसी के इस ग्रन्थ की उपेक्षा भी नहीं कर सकते।

सरग न धरति न खभमय , बरम्ह न बिसुन महेस ।

बजर बीज बीरौ अस , ओहि न रंग न भेस ॥^१

ऋग्वेद के नासिदेय सूक्त और यजुर्वेद के अन्तिम अध्याय में हमें भारतीय साहित्य में पहली बार 'अनस्तित्व' (nonexistence) के ऐसे वर्णन मिलते हैं । नासिदेय सूक्त में है—

उस समय न सत् था न अ-सत् ।

न अन्तरिक्ष था न उसके परे व्योम था ।

किसने सबको ढाँका था ? और कहाँ ? और किसके द्वारा रक्षित ?

क्या वहाँ पानी अथाह था ॥१॥

तब न मृत्यु था न अमर मौजूद ,

रात और दिन में वहाँ भेद न था ।

१—प्रारम्भ में केवल शून्य-शून्य था, न नाम था, न स्थान था, न शब्द था । उस समय ईश्वर की कलाएँ ईश्वर में ही लीन थीं, सृष्टि-रूप में उनका विस्तार नहीं हुआ । वहाँ केवल अलख था, नाम, स्थान और आकार नहीं थे । पूर्ण-पुराण पुरुष ही था, न पाप, न पुण्य । गुप्त से भी गुप्त और शून्य से भी शून्य । वह अलख (अलक्ष्य) अकेला था । कोई शब्द नहीं । सूरज-चौद, दिन-रात नहीं । अक्षर, सुर, बोल, आकार इन सब की कथा अकथ है, क्या कहा जाये । सब एक अनिर्वचनीय अनस्तित्व के अंग थे । यदि मैं कुछ कहता हूँ, तो भी मानो उसके सम्बन्ध में कुछ नहीं कहता क्योंकि वह वर्णन के बाहर है । उस समय कोई रूपरेखा या चित्र नहीं था । वह एक तत्त्व (अल्लाह) केवल अपने आप में समाया हुआ था ? न मन था, न देह, न पिंड । ऐसे से ही इस विश्व-प्रपंच का विस्तार हुआ । न स्वर्ग था, न पृथ्वी, न ब्रह्मा-विष्णु-महेश । इस ससार-रूपी वृक्ष का वज्र के समान स्थिर बीज-मात्र था । परन्तु उस बीज का न कोई रंग था, न रूप ।

कहों वह एकाकी स्वावलंबी शक्ति से श्वसित था,
 उसके अतिरिक्त न कोई था उसके ऊपर ॥२॥
 अकार वहाँ आदि में अंधेरे में छिपा था;
 विश्व मेह-शून्य जल था ।
 वह जो शून्य और खाली में छिपा बैठा है ।
 वही एक अपनी शक्ति से विकसित था ॥३॥
 तब सबसे पहिली बार कामना उत्पन्न हुई;
 जो कि अपने भीतर मन का प्रारम्भिक बीज थी ।
 और ऋषियों ने अपने हृदय में खोजते हुए,
 अ सत् में सत् के योजक सम्बन्ध को खोज पाया ॥४॥

×

×

×

वह मूल स्रोत जिससे यह विश्व उत्पन्न हुआ,
 और क्या वह बनाया गया या अकृत था,
 (इसे) वही जानता या नहीं जानता है, जो कि
 उच्चतम द्यौलोक से शासन करता है, जो सर्वदर्शी
 स्वामी है ॥७॥ (राहुल साकृत्यायन का अनुवाद, दर्शनदिग्दर्शन,
 पृ० ३८७—८)

उपनिषदों में नासिदेय सूत्र की इसी चिंताधारा का विशेष
 विकास हुआ । यह जो 'न सत् था, न असत्', उसे ही उपनिषद्
 'ब्रह्म' की संज्ञा देते हैं और अनेक विरोधी धर्माश्रयी गुणों की
 उसमें प्रतिष्ठा करते हैं। बाद में बौद्ध दार्शनिकों ने 'शून्य' को ही
 परमतत्त्व माना, परन्तु शून्य की उन्होंने जो परिभाषा की वह
 उपनिषदों की ब्रह्म की परिभाषा से बहुत भिन्न नहीं है । पद्मावत
 में परमात्वतत्त्व को सर्वव्यापक और प्रेममय अवश्य बताया
 गया, परन्तु इतनी ऊँची उड़ान वहाँ नहीं है । 'अखरावट' में
 कवि स्पष्ट ही भारतीय वेदान्त से प्रभावित है । नीचे हम

‘अखरावट’ की आध्यात्मिक और दार्शनिक विचारधारा की विस्तृत विवेचना करेंगे।

(१) सृष्टि

‘अखरावट’ के कवि की कल्पना है कि प्रारम्भ में जो महाशून्य था, उसी से इस सृष्टि की रचना हुई है। इस्लामी रवायतो (कथाओं) में है कि जब कुछ नहीं था तो केवल अल्लाह था। उसने कहा—‘कुन्’ (प्रकाश हो) और प्रकाश हो गया। कवि कहता है—

गगन हुता नहि महि हुती, हुते चद नहि सूर।

ऐसह अधकूप मह रचा मुहम्मद नूर ॥

उस अल्लाह (साईं, आदि गोसाईं) ने खेल के लिए इस सृष्टि की रचना की। वह स्वयम् उन चौदहों भुवन में रमा हुआ है जिनका निर्माण उसने किया और अपने खेल के रहस्य को स्वयम् वही जानता है। उसी एक प्रारंभिक नूर (प्रकाश) से अठारह सहस्र जीव-कोटियों (योनियों) की रचना हुई।^२ सचमुच में वह आदिसत्ता इन अठारह सहस्र जीव कोटियों में प्रकट हुई है।^३ भारतीय साहित्य में अश्वत्थ के रूप में संसार की कल्पना की गई है। गीता और मानस में सृष्टि प्रसंग इसी रूप में वर्णित है।^{४-५} ‘अखरावट’ का कवि भी इसी रूपक को ग्रहण

२—आदिहु ते जो आदि गोसाईं। जेह सब खेल रचा दुनियाई
जस खेलेसि तस जाइ न कहा। चौदहु भुवन पूरि सब रहा
एक अकेल न दूसर जाती। उपजे सहस्र अठारह भौती

३—रहा जो एक जल गुप्त समुदा। बरसा सहस्र अठारह बुंदा

४-५—ऊर्ध्वमूलमघः शाखमश्वत्थ प्राहुरव्ययम्।

छन्दासि यस्य पर्णानि यस्त वेद स वेदवित् ॥

करता है। अल्लाह ने पहले नाम-रूप में मुहम्मद की रचना की। उनके प्रेम-बीज से दो अंकुर निकले। एक श्वेत, एक श्याम। श्वेत अंकुर से जो पत्र निकला वह धरती बना, श्याम अंकुर के पत्र से आकाश। इसके बाद इसी द्वैत के आधार पर सूरज-चँद, दिन-रात, पाप-पुण्य, सुख-दुख, आनन्द-सताप, नरक-बैकुंठ, अच्छे-बुरे और भूठ-सच की सृष्टि हुई।^६ इस सृष्टि को देख कर उस प्रभु (अल्लाह) के हृदय में अत्यन्त आनन्द हुआ।^७

फिर उसने इबलीस (शैतान) की सृष्टि की।^८ इसके

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषय प्रवालाः ।
अधश्च मूलान्म्युसंततानि
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥

अव्यक्तमूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने ।
षट्कथ साखा पच बीस अनेक पर्न सुमन घने ॥
फल जुगल विधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे ।
पल्लवत-फूलत नवल नित संसार विटप नगामहे ॥

६—ऐस जो ठाकुर किए एक दाऊँ । पहिले रचा मुहम्मद नाऊँ
तेहि कै प्रीति अस जामा । भए दुइ विरिछ सेत औ सामा
होते बिरवा भए दुइ पाता । पिता सरग औ धरती माता
सूरज, चँद, दिवस औ राती । एकहि दूसर भएहु सँघाती
चलिसो-लिखनी भई दुइ फारा । विरिछ एक उपनी दुइ डारा
भेटहि जाइ पुनि, औ पापू । दुख औ सुख, आनंद सतापू
औ तब भए नरक बैकूठू । भल औ मद, सँच औ भूँटू

७—नूर मुहम्मद देखि तब भा हुलास मन सोइ

८—पुनि इबलीस सँचरेउ

बाद उसने अपनी ही प्रतिमूर्ति के रूप में आदम का निर्माण किया। इसके बाद चार फरिश्ते, फिर चार भूतो और अन्त में पंच भूतात्मक इंद्रियों की रचना हुई। इन पंच भूतो और भूतात्मक इंद्रियों से उसने 'काया' का निर्माण किया जिसमें बीच-बीच में नव खुले द्वार रखे और दसवे द्वार (ब्रह्मरथ) को बंद रखा। आदम की रचना के बाद अल्लाह ने इबलीस को बुला कर कहा—यह दूसरी सृष्टि है। इसकी बंदगी में सिर झुकाओ। सब फरिश्तो ने सिर झुकाये। परन्तु इबलीस (नारद = शैतान) को अल्लाह ने दसवे द्वार का रक्षक बनाया। आदम के साथ इस तरह उसका सदैव का संग हो गया। इसी नारद या इबलीस ने मनुष्य को धर्म-मार्ग से बहका कर पापी कर दिया।^{१०} आदम ने हौवा का सृजन किया और दोनों आनन्द-पूर्वक स्वर्ग में रहने लगे। इबलीस (शैतान) के बहकाने

९—जबहीं जगत किएउ सब साजा। आदि चहेउ आदम उपराजा
पहिलेइ रचे चारि अठवायक। भए सब अठवैयन के नायक
यह आयसु चारिहु के नाऊँ। चारिवस्तु मेरवहु एक ठाऊँ
तिन्ह चारिहु कै मँदिर सँवारा। पँच भूत तेहि मँह पैसारा
आपु आपु मँह अरुभी माया। ऐस न जानै दहुँ केहि काया
नवद्वारा राखे मँभियारा। दसवँ मूँदि कै दिएउ केवारा

X

X

X

उहँई कीन्हेउ पिण्ड उदेहा। यह सँजून आदम कै देहा
भइ आयसु, यह जग भा दूजा। सब मिलि नवहु, करहु एहि पूजा
परगट सुना सबद, सिर नावा। नारद कहँ बिधि गुपुत दिखावा
तू सेवक है मोर निनारा। दसई पँवरि होसि रखवारा
१०—धरिमिहि धरि पापी जेहु कीन्हा। लाइ संग आदम के दीन्हा

से ही आदम ने गेहूँ खा लिया और !फलतः वे दोनों स्वर्ग से निकाले गये।^{११}

पृथ्वी पर आकर दोनों को बड़ा पछतावा हुआ। छः मास तक वे रोते रहे। अन्त में उन्होंने मिल कर सृष्टि चलाई। हिंदू-तुरुक उन्हीं की सतान है।^{१२}

[(२) जीव-ब्रह्म

जीव-ब्रह्म की स्थिति की 'अखरावट' में विशद रूप से विवेचन है। ब्रह्म इस सारे विश्व में पूर्ण रूप से विराजमान है (= पूरा रहा) —

चौदह भुवन पूरे सब रहा
वही वास्तव में कर्ता है, जीव कुछ करता-धरता नहीं—

वैसब किल्लु, करता किल्लु माही। जैसे चलै मेघ परछाही
प्रारंभ में जीव-ब्रह्म एक थे, परतु बाद में उनका विछोह हो
गया। जीव में ब्रह्म से मिलने की जो तड़प है, वह इसी विछोह
के कारण है—

हुता जो एकहि संग, हौ तुम्ह काहे बीछुरा।
अब जित उठै तरंग मुहमद कहा न जाई किल्लु ॥

११—आदम हौवा कहँ सृजा, लेह घाला कबिलाम।
पुनि तहँवा ते काढा, नारद के विसवास ॥

×

×

×

१२—खाएनि गोहूँ कुमति भुलाने। परे आई जग महँ पछिताने
छोड़ि जमाल-जलालहिं रोवा। कोन ठावँ तैं बैठ बिछोवा
अंधकूप सगरउँ ससारू। कहीं सो पुरुष, कहीं मेहरारू
रैन छ मास तैसि भरि लाई। रोइ रोइ आँसू नदी बहाई
पनि माया करता कहँ भई। भा। भिनसार, रैन हट गई
सुरुज उए, कँवल दल फले। दवौ मिले पथ कर भले

तिन्ह सतति उपराजा भोंतिहि भोंति कुलीन ।

हिन्दू तूरुक दुवौ भए अपने अपने दीन ॥

जीव-ब्रह्म और प्रकृति (सृष्टि) की एकता के विषय में जायसी अत्यंत विश्वस्त हैं । यह सृष्टि और जीव की रचना तो उस ब्रह्म ने अपनी प्रभुता प्रगट करने मात्र के लिए की है—

जौ उतपति उपराजै चहा । आपनि प्रभुता आपु सौ कहा
रहा जो एक जल गुपुत समुन्दा । बरसा सहस अठारह बुन्दा
सई औस घटै घट मेला । ओ सोइ बरन बरन होइ खेला
भए आप औ कहा गोसाई । सिर नावहु सगरिउ दुनियाई
आने फूल भोंति बहु फूले । वास वेधि कौतुक सब भूलै
इस प्रकार जीव-ब्रह्म का अभेदत्व स्थापित हो जाता है । अंतर केवल इतना है कि अल्लाह के जमाल-जलाल का जीव में लोप हो जाता है । इसी जमाल-जमाल के प्रति उसका स्वाभाविक आकर्षण है । अपने भीतर डूब कर साधक इस अभेदत्व के तत्त्व को पहचान जाता है, तो वह आप लापता हो जाता है और उस अनंत सत्ता में विलीन हो जाता है—

बुन्दहि समुद समान, यह अचरज कासौं कहाँ

जो हेरा सो हेरान, मुहमद आपुहि आपु महँ

दूध और घी की उपमा से कवि इसी एकता की घोषणा करता है—

दूध मॉंभ जस घीउ है, समुद मॉंह जस मोति

नेन मींजिजो देखहु, चभकि उठै तस जोति

वही ज्योति इसी जगत के भीतर भासित हो रही है । इसी से कवि कहता है—एक ही ब्रह्म के चित् और अचित् दो पक्ष हुए, दोनो के बीच में तेरी अलग सत्ता कहाँ से आई ? अपनी अलग सत्ता के भ्रम या अहंभाव को मिटा कर ब्रह्म में मिलकर एक हो जा—

एकहि ते दुह होइ, सौं राज न चलि सकै
 नीचुते आपुहि खोइ मुहमद एकै होई रहु
 एक अन्य स्थान पर जायसी ब्रह्म की अनन्य सत्ता को इस
 प्रकार चित्रित करते हैं—

ठा-ठाकुर बड़ आन गोसाईं । जेह सिरजा जग अपनिहि नाई
 आपुहि आपु जौ देखै चहा । आपनि प्रभुता आपु सौ कहा
 सबै जगत दरमन कै लेखा । आपुहि दरमन आपुहि देखा
 आपुहि बन औ आप पखेरु । आपु हे सौजा, आपु अहेरु
 आपुहि पुहुप फूलि बन फूले । आपुहि भँवर बास रस भूले
 आपुहि फल, आपुहि रखवारा । आपुहि सो रस चाखनहारा
 आपुहि घट घट महँ मुख चाहे । आपुहि आपना रूप सगाहै
 आपुहि कागद, आपु मसि, आपुहि लेखनहार ।

आपुहि लिखनी आखर, आपुहि पँडित अपार ॥

(३) यः पिंडे स ब्रह्मांडे

परंतु जैसा हम ऊपर कह आये हैं, जायसी योग से भी

१३—वह अल्लाह सब से बड़ा है । उसने इस जगत को अपनी
 प्रतिच्छाया के रूप में गढ़ा । उसने जब अपने आपको देखना चाहा
 तो अपनी प्रभुता का विस्तार किया । इस जगत को दर्पण समझो
 जिसमें ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिबिंब दिखलाई पड़ता है । वह आप ही
 दर्पण है, आप ही देखने वाला । वही बन है, वही पक्षीगण । वही
 आखेट है, वही अहेरी । वही बनपुष्प है, वही फूल की सुगंध पर
 मत भँवर । वह स्वयम् फल है, स्वयम् ही रखवाला । वही आप
 उसके रस को चाखने वाला है । वही घट है, वही घट में अपने मुख
 का प्रतिबिंब देख रहा । वही प्रतिबिंब है और उसकी प्रशंसा करने
 वाला भी वही है । वही कागज है, वही स्याही, वही लिखने वाला,
 वही लेखनी, वही अक्षर, वही अपने लिखे को समझ सकने वाला
 पंडित । इस प्रकार इस ससार में कहीं भी उसके सिवा कोई नहीं ।

प्रभावित हैं और उन्होंने पद्मावत और अखरावत में काया के भीतर परमात्म-तत्त्व की प्राप्ति का विस्तार-पूर्वक वर्णन किया है। पिंड और ब्रह्मांड की एकता का अर्थ है अनंत और सांत की परस्पर अनन्योन्याश्रयता। व्यापक ब्रह्म जिस प्रकार सारी सृष्टि में समाया हुआ है, उसी प्रकार मनुष्य के देह में भी समाया हुआ है। इसी से जायसी मनुष्य-शरीर में संसार की प्रतिच्छाया देखते हैं—

माथ सरग, धर धरती भएऊ । मिलि तिन्ह जग दूर होइ गएऊ
माठी मोंसु, रक्त मा नीरू । नसे नदी, हिय समुद गँभोरू
रीढ सुमेरू कीन्ह तेहि केरा । हाड पहार जुरे चहुँ फेरा
वार बिरिछ, रोवो खर जामा । सूत सूत निसरे तन चामा
मातौ दीप, नवौ खड, आठौ दिसा जो आहिं
जो ब्रह्म सो पिंड है, हेरत अन्त न जाहिं
आगि, वायु, जल, धूरि चरि मेरइ भौंडा गढा
आपु रहा भरि पूरि मुहमद आपुहि आपु महँ । १४

आगे चलकर कवि इस रूपक को और भी स्पष्ट कर देता है—

नासिक पुल सरात पथ चला । तेहि कर भौहे हैं दुइ पला
चाँद मुरुज दूनौ सुर चलती । सेत लिलार नखत भलमलही
जागत दिन-निसि सोवत मोंभा । हरष भोर, बिसमय होइ सोंभा
सुख बैकुण्ठ मुगुति और भोगू । दुख है नरक जो उपजै रोगू

१४—(मनुष्य का) माथा स्वर्ग हुआ, धड धरती । इन दो पदों से मिलकर मानो दूररा ब्रह्मांड हो गया । मास हुआ मिट्टी, रक्त हुआ पानी, नसे नदी और हृदय गभीर समुद्र । मेरुदंड सुमेरु पर्वत हुआ जिसके चारों ओर अस्थिरूप में अनेक पहाड़ इकट्ठे हुए । बाल हैं वृक्ष, रोम हैं घास-पात । इसी पिंड में सात द्वीप, नव खड और आठों दिशाएँ हैं । जो ब्रह्मांड में है वही सब पिंड में है । इस पिंड को खोजो तो फिर इसका अंत नहीं मिलेगा ।

बरखा रुदन, गरज अति कोहू । बिजुरी हँसी हिवचल छोहू
घरी पहर बेहर हर सौंभा । बीतै छुओ ऋतु, बारह मासा १५
और भी आगे कवि शरीर पर सारे इस्लामी धर्म का आरोप
कर देता है । यह घर (शरीर) ही जगह है जिसमे पृथ्वी और
आकाश समाया हुआ है । माथा मक्का है, हृदय मदीना । श्रवण,
आँख, नाक, मुख—इन्हें चार फरिश्ते (जिबराईल, मकाईल,
इसराफील और इज़राईल) कहो, या चार मित्र (उमर, उसमान
आदि चार खलीफे), या चार मुरशिद (गुरु) या चार किताबें
(तौरैत, जबूर, इंजील, कुरान) । इन्हे अली, हसन हुसेन
आदि इमाम भी कह सकते हैं । नाभिकमल (कुण्डलिनी) के
पास कोतवाल (प्रहरो) के रूप मे नारद (शैतान) विराज-
मान है । यह नवो द्वार घमता रहता है । दसवे द्वार से वह
किमी को प्रवेश नहीं करने देता । १६

१५—नाक मानो सरात का पुल है जिससे पार होकर स्वर्ग तक जाना
सभव हैं । भौहें मानो उस पुल के दो पार्श्व हैं । श्वास का प्रवाह कभी
दाहने नथने से चलता है, कभी बाये से । माथे पर जैसे श्वेत नक्षत्र
भलमला रहे हों । शरीर की जाग्रत अवस्था को ही दिन समझो ।
शरीर मे जब हर्ष का संचार होता है, तब प्रभात जानो । सुख है
बैकुंठ, दुख रोग हैं नरक । चंद्र, सूर्य, दिन, रात ऋतु, मास, वर्षा,
चमक, गरज, घड़ी, पहर, युग इत्यादि सब शरीर के भीतर समझो ।
प्रत्येक सौंस घडी पहर की गणना करती है । इसी शरीर में छुओ
ऋतु हैं और बारहों महीने ।

१६—घा-घट जगत बराबर जाना । जेहि महँ धरती सरग समाना
माथ ऊँच मक्का बन ठाऊँ । हिया महीना नबी का नाऊँ
सरवन, आँखि, नाक, मुख चारी । चारिहु सेवक लेहु विचारी
भावै चारि फिरीस्ते जानहु । भावै चारि चार पहिचानहु

इस प्रकार जायसी विश्वव्यापी चेतनतत्त्व (अल्लाह) को मनुष्य शरीर (घट) के भीतर ही स्थित मानते हैं और उनके अनुसार बाहर की सारी सृष्टि मनुष्य के भीतर सूक्ष्म रूप में रची हुई है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है, कि ब्रह्म की प्राप्ति के लिए साधक को कहीं बाहर नहीं जाना पड़ता। वह तो काया में ही स्थित है ! जब सारा ब्रह्मांड उससे भरा हुआ है तो वह पिंड में क्यों नहीं होगा ?

(४) साधना

अखरावट में जीव, ब्रह्म और प्रकृति के पारस्परिक संबंध के साथ साधना-पक्ष पर भी विचार किया गया है। मूलतः सूफी साधना प्रेम और विरह की साधना है। साधक को अपने भीतर बिछुड़े हुए प्रियतम (अद्वैत स्थिति, अल्लाह) के प्रति 'प्रेम की पीर' जगानी पड़ती है। एक समय जीव ब्रह्म (अल्लाह-बन्दा) एक थे। न जाने किस कारण से इस अभेद में भेद उत्पन्न हो गया। अब दिनरात जीव के हृदय में यह तडपन उठती है कि कैसे ब्रह्म से मिलकर फिर अभेदस्थिति का अनुभव किया जाये—

हुता जो एकहि संग, हौ तुम्ह काहे बीछुरे ।

अब जिउ उठै तरंग, मुहमद कहा न जाइ किछु ॥

यह तरंग तीव्र प्रेम की ही तरङ्ग है। परन्तु यह प्रेमरस साधा-

भावै चारिहु मुरसिद कहऊ । भावै चारि कितबै पढऊ
भावै चारि इमाम जो आगे । भावै चारि खम जे लागे
भावै चारिहु जुग मति पूरी । भावै आगि, बाद, जल, धूरी

नाभि-कंबल तर नारद लिए पाँच कोटवार ।

नवौ दुवारि फिरै नित दसई कर रखवार ॥

रण प्रेम-भावना नहीं है, यह तो 'सिर का सौदा' है। जायसी कहते हैं—

परै प्रेम के भेल, पिउ सहुँ धनि मुख सो करै
जो सिर सेती खेल, मुहमद खेन सो प्रेम-रस

इस प्रेम की साधना के लिए शिक्षा-दीक्षा की कोई आवश्यकता नहीं है। केवल 'उसमे' खो जाना है। उसमे खोकर ही अपने को पाना होता है—

का भा पढे गुने औ लिखे ? करनी साफ किए औ सिखे
आपुहि खोइ ओहि जो पावै । सो शीरौ मनु लाइ जमावा
जो ओहि हेरत जाइ हेराई । सो पावै अमृत-रुल खाई
आपुहि खोए पिउ मिलै, पिउ खोए सब जाइ ।

देखहु बूझि बिचार मन, लेहु न हेरि हेराइ ॥
परन्तु यह प्रिय की खोज सरल काम नहीं है। यह कोई हँसी-
खेल नहीं है। जो उसे पा जाता है, वह तो गूँगा हो जाता है।
उसे तो कुछ कहने को ही नहीं रहता—

कटु है पिउ कर खोज, जो पावा सो मरजिया
तहँ नहि हँसी न रोज, मुहमद ऐसे ठाँव वह
वास्तव मे वह तत्त्व तो पुष्प-वाम की तरह सूक्ष्म है। वह तो
नैनो मे हो भरा है। उसे निकट से निकट और दूर से दूर
जानो। कवि कहता है—

पुहुप बास जस हिरदय रहा नैन भरिपूरि
नियरे से सुठि नीयरे, ओहट से सुठि दूरि
इस अत्यन्त सूक्ष्म-तत्त्व के प्रेम के द्वारा भावगम्य किया जा
सकता है।

वैसे किसी विशेष साधना की ओर जायसी का दुराग्रह
नहीं है, सभी साधक ठीक हैं। वे तो कहते हैं—

बिधिना के मारग हैं ते ते । सरग-नखत तन-रोवों जेते
 जेइ हेरा तेइ तहँवै पावा । भा सतोष, समुझि मन गावा
 परन्तु वे फिर भी 'मुहम्मद' के पन्थ को अधिक उपादेय मानते
 हैं । यह पंथ अत्यन्त निर्मल है । इससे कविलास (स्वर्ग)
 की प्राप्ति होती है । कुरान इस पन्थ का प्रमाण है । इसको
 सुनते ही शैतान (नारद) भाग खड़ा होता है । पाप छूट जाता
 है और पुण्य की प्राप्ति होती है । इस मार्ग को जो पा जाता है,
 वह इस संसार-रूपी सागर के पार हो जाता है । जो इस पन्थ
 से भूल-भटक जाता है, उसे चोर-डाकू लूट लेते हैं । परन्तु यह
 स्पष्ट है कि यह 'मुहम्मद' के पन्थ की बात केवल श्रद्धालुओं
 को आश्वस्त करने के लिए है । आगे चलकर जायसी नमाज,
 तरीकत, हकीकत, मारफत और शरीअत को इस पन्थ के स्तंभ
 बताते हैं । इन पर जायसी ने विस्तार-पूर्वक नहीं लिखा है,
 परन्तु सूफी मत में इनकी व्याख्या उपस्थित है । जान पड़ता है,
 इस व्याख्या से जायसी पूर्णतः सहमत हैं । इस्लामी सृष्टि-
 रचना की कल्पना से भी उनका कोई मतभेद नहीं है । कुरान
 में आदम को खुदा (अल्लाह) के रूप-रङ्ग का कहा गया है ।
 यहाँ भी कोई भेद नहीं । आदम के स्वर्ग से निकाले जाने की
 कथा भी जायसी मानते हैं । परन्तु उन्होंने आदम के अल्लाह
 से बिछोह के दुख को साधारण जीव का वियोग दुख मान कर
 इस्लामी कल्पना पर सूफी मत की प्रतिष्ठा कर दी है । जीव-
 ईश्वर में जमाल-जलाल के अस्तित्व और अनस्तित्व का ही
 भेद है । जीव जब इस ससार में जन्म लेता है, तो अल्लाह के
 जमाल और जलाल से अलग हो जाता है । इसका उसे दुःख
 होता है—

छोडि जमाल-जलालहि रोवा । कोन ठाँव तें दैव बिछोवा
 यही सूत्र है जिसे लेकर सूफी साधक आगे बढ़ते हैं । सूफी

साधकों की भाँति जायसी भी मक्का-मदीना, फरिश्तों और इमाम मे विश्वास रखते हैं, परंतु इनकी उन्होंने नये प्रकार से व्याख्या भी कर दी है। ये सब कायानिष्ठ है। इनके लिए हज (तीर्थ-यात्रा) और कृच्छ्र साधना की आवश्यकता नहीं।

कायानिष्ठ ब्रह्म (अल्लाह) की प्राप्ति के लिए सूफियो की अपनी विशिष्ट साधना है, परंतु उन्होंने योग-मार्ग की साधना को भी बुरा नहीं कहा है। स्थान-स्थान पर उन्होंने योगियों के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है। अनहद नाद, इडा, पिगला, सुषुम्ना, बंननालि इत्यादि न जाने योगसाधना-परक कितने शब्द 'अखरावट' में आते हैं। योगियों में 'सुन्न' का बड़ा महत्व था जो कदाचित् बौद्ध शून्यवादी सिद्धों के दाय के रूप में उन्होंने प्राप्त किया था। जायसी इस 'शून्यवाद' को भी साधना में स्थान देना नहीं भूले—

इहै जगत के पुनि, यह जप तप सब साधना ।

जानि परै जेहि सुन्न मुहमद सोई सिद्ध भा ॥

भा-भल सोइ जो सुन्नहि जानै । सुन्नहि ते सब जग पहिचानै
सुन्नहि ते है सुन्न उपाती । सुन्नहि ते उपजहि बहु भाँती
सुन्नहिं मोंभ इद्र बरम्हडा । सुन्नहिं ते टीके नवखडा
सुन्नहिं ते उपजे सब कोई । पुनि बिलाई सब सुन्नहि होई
सुन्नहिं सात सरग उपराहीं । सुन्नहि सातौ धरति तराहीं
सुन्नहि ठाट लाग सब एका । जीवहि लाग पिंड सगरे का
सुन्नम सुन्नम सब उतराई । सुन्नहि महुँ सब रहे समाई

सुन्नहि महुँ मन-रूख जय काया महुँ जीउ ।

काठी मोंभ आगि जस, दूध माहुँ जस घीउ ॥

शून्य के सम्बन्ध में उन्होंने जो ऊपर कहा है, वह 'सिद्धसिद्धांत-पद्धति' की इस विचारधारा से अधिक भिन्न नहीं है—

न ब्रह्मा विष्णु रुद्रौ न सुरपति सुरा नैव पृथ्वी न चापो
 नैवाग्निर्नापि वामुन च गगनतलं नौ दिशौ नैव कालः
 नौ वेदा नैव सज्ञा न च रवि शशिनौ नौ विविनैव कल्पः
 स्वज्योतिः सत्यमेकं जयति तव पद सच्चिदानंद मूर्ते ॥

यह 'शून्यवाद' हिंदी काव्य में पहली बार सरहपा में मिलता है—

जहि मन पवन न सचरइ रवि शशि नाइ पवेश
 तहि पर चित्त विशाम करु सरहे करिअ उवेश
 आद न अत न मफु णउ, णउ भव णउ निबवाण
 एहु सो परम महासुह, णउ पर णउ अप्पाण

बौद्ध नागार्जुन प्रसिद्ध शून्यवादी है। माध्यमिक शास्त्र (मञ्जयो सं० ११७१) में नागार्जुन ने बताया है कि तत्त्व जैसा है वैसा उसका वर्णन करना असंभव है। वह शून्य है। शून्य ही से सब पदार्थ उत्पन्न हैं और शून्य में ही वे लीन हो जाते हैं। इस शून्य रूप की अनिर्वचनीय सत्ता की अनुभूति होने के कारण ही बुद्ध तथागत हैं। दृश्य पदार्थ भी शून्य ही हैं। शरीर भी शून्य ही हैं। शून्य को हम सत् कह सकते हैं, न असत्। सत् और असत् दोनों भ्रम हैं। सापेक्ष गुणों के धीरे-धीरे निराकरण से प्रज्ञा प्राप्त होती है। इसे "शून्याशून्य" भी कह सकते हैं। यही शून्यवाद योगियों (नाथपंथियों) के माध्यम से कबीर आदि सन्तो और जायसी आदि सूफियों को प्राप्त हुआ। ब्रह्मरंध्र, भँवर-गुफा इत्यादि शून्यवादी शब्द तीनों मतवादों में एक ही प्रकार प्रचलित हैं। कबीर ने 'निरंजन' को 'शून्य' का ही साम्यवाची माना है—

राम निरजन प्यारे अञ्जन सकल पसारा रे
 अञ्जन उत्पति ओ ओंकार, अञ्जन मँड्या सब विस्तार

अञ्जन ब्रह्म-सकर-इद्र, अञ्जन गोपी संगि गोविद
 अञ्जन वाणी अञ्जन वेद, अञ्जन कीया नाना भेद
 अञ्जन विद्या-पाठ-पुराण, अञ्जन फोकट कथहिं गियान
 अञ्जन पानी अञ्जन देन, अञ्जन की करै अञ्जन सेव
 अञ्जन नाचै अञ्जन गावै, अञ्जन भेष अनन्त दिखावै
 अञ्जन कहो कहो लग केता, दान-पुनि तप तीरथ जेता
 कहै कबीर कोई विरला जागै, अञ्जन छोड़ि निरजन लागे
 एक अन्य स्थान पर कबीर कहते हैं—

गगन की गुफा तहँ गैब का चोदना

उदय ओ' अस्त का नाम नाहीं
 दिवस ओ' रैन तहँ नेक नहिं पाइये,

प्रेम परकाश के सिधु माहीं
 सदा आनद दुखदद व्यापै नही,

पूरनानद भरपूर देखा
 मर्म ओ' आति तहँ नैक पावै नही,

कहँ कबीर ए एक देखा
 स्पष्ट है कि यही विचारधारा बहुत कुछ अपने चलते-फिरते
 रूप में लोक-जीवन से जायसी को प्राप्त हुई और उन्होंने उसे
 'पद्मावत' में अपनी प्रेम-विरह-साधना में विशिष्ट अङ्ग के रूप
 में स्वीकार कर लिया।

काया-निष्ठ ब्रह्म अथवा पिंड में ब्रह्मांड की विचारधारा भी
 जायसी की अपनी वस्तु नहीं है। वह तो कदाचित् प्रागैतिहासिक
 काल से चली आती है। सरहपा कहते हैं—

एत्थु से सुरसरि जमुणा, एत्थु से गगा साअरु

एत्थु पआग बणारसि, एत्थु से चद दिवाअरु

खेत्तु-पीठ-उपपीठ, एत्थु मई भमइ परिट्ठओ

देहा-सरिसअ तित्थ, मई सुह अरण्य ए दिट्ठओ

सण्ड-पुअणि-दल-कमल-गध केसर वरणाले
 छड्डु वेणिम ण करहु सो सँण लग्गहु बढ ! आले
 काय तित्थ खअ जाइ, पुच्छइ कुल ईणओ
 बम्ह-विटठु तेलोअ, सअल जाहि णिलीण ओ
 बुद्धि विणासइ मण मरइ, जहि तुट्टइ अहिमाण
 स माआमअ परम फलु, तहिं कि वज्जइ भाण

यही काया मे गङ्गा-जमुना हैं, यही गङ्गासागर है, यही प्रयाग-वाराणसी है, यही सूर्य-चन्द्र हैं। इसी काया मे क्षेत्र, पीठ, उपपीठ है। इन्ही क्षेत्रो मे भ्रमणी करो। देह के समान तीर्थ मैने अन्यत्र नहीं देखा। नाल पर स्थित कमलिनी के प्रत्येक दल मे गंध है, हे मूढ़, तू इस तत्त्व को नहीं जानता। जीव-ब्रह्म, क्षेत्र (देह)-क्षेत्रज्ञ (देही) का यह द्वैत छोड़ दे। इस काया-तीर्थ मे जाति-कुल, ब्रह्मा-विष्णु, त्रैकोत्य सब हैं। मनुष्य को केवल अपने अभिमान का नाश करना है। जब बुद्धि का नाश हो जाता है और मन अपनी स्वाभाविक अवस्था को प्राप्त होकर परम फल की प्राप्ति करता है। सब ओर से हटा कर ध्यान वही बाँध ! कबीर इसी बात को अपनी धुन मे अपने ढंग से कहते हैं—

खेल ब्रह्माण्ड का रिड में देखिया मर्यादा दूरि भागी
 वाहरा-भीतर एक आकासवत सुपु मना डोरि तहँ उलटि लागी
 पवन को उलटि कर सुन्न मे घर किया धरिया मे अधर भरपूर देखा
 कहै कबीर गुह्रपूर की मेहर सो तिखुटी मद्ध दीदार पेखा
 यही बात अनेक प्रकार से 'अखरावट' मे जायसी ने कही है।
 'त्रिकुटी' की महिमा उनके सूफो-पंथ मे भी चल पड़ी है—

पुतरी महँ जो बिन्दी है कारी। देखै जगत सो पट विस्तारी
 हेरत दिस्टि उबारि तस आई। निरखि सुन्न महँ सुन्न समाई
 पेम-समुन्द सो अति अवगाहा। बूड़ै जगत न पावै थाहा

और भी आगे बढ़ कर वह 'कायानगरी' की बात उठाते हैं—

नर-नगरी काया विधि कीन्हा । लेइ खोजा गावा, तेइ चीन्हा
पद्मावत के 'गढ़छेका' प्रसंग (खंड) में कवि ने इम कायानगरी
(गढ़) का जीत कर पद्मावति (ईश्वर) की प्राप्ति का रूपक
रूप में अत्यंत आकर्षिक वर्णन किया है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जायसी की साधना का आधार
औपनिषदिक ब्रह्मवाद है; उन्होंने ब्रह्म को कायानिष्ठ मान कर
योग की अनेक साधनाओं को अपनाया है और कट्टर इस्लामी
पंथ के बाह्योपचारों को स्वीकार करते हुए उपनिषदों के ब्रह्मवाद
और योग के चक्रभेदन के आधार पर इन इस्लामी बाह्याचारों
की नई व्याख्या की है जिनसे इनका रूप ही बदल गया है ।
वास्तव में मध्ययुग समन्वय का युग था । प्रतिक्रिया-रूप में
प्रतिकार भी था । तुलसीदास और सूरदास का काव्य प्रतिकार
का ही काव्य है । परन्तु सिद्धों, संतों, नाथों और सूफियों
के काव्य में प्रतिकार की अपेक्षा समन्वय और सहकार की
भावना ही अधिक है ।

(५) नैतिक मतवाद

सभी आत्मनिष्ठ धर्मों में आत्मपरिष्कार के लिए
नीति के सुन्दर तत्त्वों का विधान है । जायसी ने 'अखरावट'

१७—द्रा- डरपहु मन सरगहि, खोई । जेहि पाछे पछिताव न होई
गरब करै, जो 'हौ, हौ करई । बैरी सोइ गोसाईं क अहई
जौ जानै नहचय है मरना । तेहि कहँ 'मोर-तोर' का करना
नैन, बैन, सरवन विधि दीन्हा । हाथ पाँव सब सेवक कीन्हा
जेहि के राज भोग-मुख करई । लेइ सबाद जगत जस चहई
सो सब पूछिहि, मै जो जो दीन्हा । तँ ओहि कर कस अवगुन कीन्हा
कौन उतर, का करब बहाना । बौवै बबुर, लवै कित धाना
कै किल्ल लेइ, न सकष तव, नितहि अविधि नियराइ

मे चारित्रिक और आध्यात्मिक शुद्धि के सम्बन्ध मे बहुत कुछ सुना है। साधारण भक्त की तरह उनकी दृष्टि भी सदैव इस लोक से ऊपर परलोक की ओर उठी रहती है। यह 'अहम्' किसलिये ? जो 'मेरा' 'मेरा' करता है, वह ईश्वर का बैरी है। जब मरना निश्चय है तो मेरा-तेरा क्या ? उसने आँख-कान दिये, अन्य अनेक इंद्रियाँ दी, इनका ठीक उपयोग न कर सका तो वह पूछेगा तो क्या उत्तर होगा, क्या बहाना होगा। इसी से कवि साधक को साधारण इंद्रियोपभोग से ऊपर उठने के लिए आह्वान करता है। साधक का सब से बड़ा शत्रु है मन। इसी का निरोध करना होगा। इसके लिए मन की साधना की आवश्यकता होगी। रूपक रूप मे इस साधना का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

मा-मन मथन करै तन खीरु । दुहै सोइ जो 'आपु अहीरु
पाँचौ भूत आतमहि मारै । दरब-गारब करसी कै जाँरै
मन माठा सम अस कै धौवै । तन खैला तेहि माहँ बिलौवै
जपहु बुद्धि कै दुइ सन फेरहु । दही चूर अस हिया अमेरहु
पछुवाँ कटुई कैसन फेरहु । ओहि जोति महँ जोति अमेरहु
जस अंतरपट साढी फूटै । निरमल होय मया सब कूटै
माखन मूल उठै लेह जोती । समुद माहँ जस उलथै मोती

जस धिउ होइ जराइ कै, तस जिउ निरमल होइ

महै महेरा दूरि करि, भोग करै सुख' सोइ१८

'रामचरितमानस' के उत्तरकांड मे तुलसी ने भी कुछ इसी तरह की साधना को साधकों के सामने रखा है—

१८—मन को मथानी बनाले और तन को क्षीर (दूध) ।
जो आप अहीर होगा, वही उसकी दुह सकेगा । आत्मा में पाँचों
भूतों को मार कर स्थिर करे । गर्व को ईधन बनावे । मन को मट्ठे
के समान धो-वोकर स्वच्छ करे । तन को मथानी बनाकर उसे

सात्त्विक श्रद्धा धेनु सुहाई । जौ हरि कृपा हृदयँ बस आई
जप तप व्रत जम नियम अपारा । जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा
तेह तून हरित चरै जव गाई । भाव बच्छ सिरु पाइ पेन्हाई
नोइ निवृत्ति पात्र विस्वासा । निर्मल मन अहीर निज दासा
परम धर्ममय पय दुहि भाई । भवटै अनल अकास बनाई
तोष मरुत तब लूमों जुडावै । घृत सम जावनु देइ जमावै
मुदितों मथै विचार मथानी । दम अधार रजु सत्य सुवानी
तब मथि काटि लेइ नवनीता । बिमल विराग सुभग सुपुनीता
जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ
बुद्धि सिखै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ

दीनों रूपक और भी आगे बढ़ते हैं । जायसी का कहना है कि
ऐसा दीपक जिस आले में जलता है, वहाँ उजयाला ही उजयाला
हो जाता है—

दीपक जैस गसत हिम-आरे । सब घर उजियर तेहि उजियारे
तेहि महँ अस समानेउ आई । सुन्न सहज मिलि आवै जाई
तहाँ उठै धुनि आउ कारा । अनहद सबह होइ भनकारा
तेहि महँ जोति अनूपम भौती । दीपक एक, बरै दुइ बाती
एक जो परगट होइ जो उजियारा । दूसर गुपुत सो दसवें दुवारा
मन जस टेम, प्रेम जस दीया । आसु तेल, दम बाती कीया

बिलोये । द्विविधा छोड़कर एक ही में ध्यान जगाओ । जप और बुद्धि
की दो दिशाओं में मथानी को घुमाओ । हृदय को दही के रूप में
मानो । पीछे छोटी कटोरी डाल-डाल कर मक्खन को अलग करो ।
सारा मल निकाल लो । तब अंतर से एक अत्यन्त निर्मल ज्योति
फूटेगी । माया-मोह का नाश होगा । इस मक्खन को तपाने से मोती
जैसा निर्मल घी प्राप्त होगा । छाछ को अलग कर दे और उस घी
को जलाये तो अत्यन्त निर्मल ज्योति का आनन्द लाभ हो सकेगा ।

तहँवा जम जस भँवरा फिरा करै चहुँ पासा
मीचु पवन जस पहुँचै, लेइ फिरै सो वास
सुनहु वचन एक मोर दापक जस आरे बरै
सब घर होइ अँजोर, मुहमद तस जिउ हीय महँ १६

तुलसी भी कहते हैं—

एहि विधि लेसै दीप तेज राशि विग्यानमय
जातहि जासु समीप जरहि महादिक सलम सब
सोहमस्मि इति वृत्ति अखडा । दीपसिखा सोइ परम प्रचडा
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा । तब भव मूल भेद भ्रम नासा
प्रबल अविद्या कर परिवारा । मोह आदि तम मिटइ अपारा
तब सोइ बुद्धि पाइ उजिआरा । उर गृहँ बैठि ग्रथि निरुआरा
छोरन ग्रंथि पाव जौँ सोई । तब यह जीव कृतारथ होई
इस प्रकार की भाव-साम्यता से मध्ययुग की सामान्य विचार-
धारा पर प्रकाश पड़ता है जो जाति और धर्म के भेदो-प्रभेदों
को नाँव कर अनंत शांति, शाश्वत सत्य की ओर प्रवाहित हो

१६—हृदय के आले में जब ऐसा दीपक जलेगा तो उजियाला ही उजियाला हो जायेगा । जल में ब्रह्म का अंश समाया होगा । शून्य निर्गुण अव्यक्त सहज रूप में प्राप्त होगा । तब वहाँ ओंकार प्रणव ध्वनि सुनाई पड़ेगी और अनाहत नाद (दिव्य सगीत) भक्त होगा । उस दीपक में दो बत्तिया जलेंगी—एक अतर्मुख, दूसरी वहिर्मुख । एक से तो प्रगट रूप में उजियाला होगा । दूसरी ज्योति दसवें द्वार के पीछे गुप्त रूप से जलती रहेगी । मन दीपक की लौ है, प्रेम का दीपक है, प्राण का तेल है और श्वास की बत्ती है । वहाँ उस ज्योति के चारों ओर जीवात्मा पतंग की भँति घूमता फिरेगा । जब मृत्यु रूपी पवन आयेगा तो वह उस पतंग को छू भी नहीं सकेगा, केवल उसकी बास प्राप्त कर सकेगा ।

रही थी। वास्तव में मध्ययुग के भक्तों, संतों और सूफियों में विचार और भावना की संकीर्णता नहीं थी। अपने-अपने धर्मों का पालन करते हुए भी वे उन्हें ही एकमात्र पंथ नहीं बताते। किसी एक मत या सिद्धान्त में व्यापक सत्य को बंध देना ऐसा ही है जैसा हाथी के अंग-प्रत्यंग को टोह-टोह कर उसके रूप और आकार का पता लगा लेने का भ्रम। जायसी ने स्वयं कहा है—

मुनि हस्ती कर नॉव अँवरन्ह टोवा धाइ कै
जेइ टोवा जेहि ठॉव मुहमद सो तैसे कहा
इसी से अखरावट में जायसी किसी सिद्धान्तवाद में बंध जाना नहीं चाहते। वे योग, उपनिषद्, अद्वैतवाद, भक्ति और इस्लामी एकेश्वरवाद से बहुत कुछ ग्रहण करते हैं। उनके लिए कुछ भी अग्राह्य नहीं है, यदि वह उनमें प्रेम की पीर जगाने में सफल हो सके। अनेक अलग-अलग पंथों को अनेक भावनाएँ, अनेक विचारावलियाँ, अनेक सूक्तियाँ जायसी के धर्मभाव में मिलकर उससे इतनी एकाकार हो गई हैं कि साधारण बुद्धि चमत्कृत हो उठती है। ब्रह्मवाद (अद्वैत), योग (हठयोग चक्रभेद और आनन्दवाद) और सूफी इस्लामी सिद्धान्तों का समन्वयात्मक एकीकरण जायसी की विशेषता है।

‘अखरावट’ में कवि जो आध्यात्मिक विचार हैं, उन्हें हम इस प्रकार संक्षेप में रख सकते हैं :—

१—आदि में एक चित्सत्ता ही की स्थिति थी, उसे चाहे आदि गोसाईं कहो, या नूर कहो, या अल्लाह, या सुन्न (शून्य)। कालांतर में इसी अनस्तित्व से द्विधा-युत जग का निर्माण हुआ। आकाश-पाताल, पाप-पुण्य, सुख-दुःख।

२—नारद या शैतान के भुलावे में आकर जीव की अभेद स्थिति जातो रही। आदम स्वर्ग से निकाला गया। जीव अल्लाह के जमाल और जलाल से वंचित हुआ।

३—जीव मे इसी वियोग को तडपन है। वह एक बार फिर अल्लाह के जमाल और जलाल को प्राप्त करना चाहता है। यह उसी समय संभव है, जब पहली अभेद-स्थिति को वह प्राप्त हो सके, जब जीव ब्रह्म (अल्लाह) हो जाये।

४—इसके लिए प्रधान साधन है मन का परिष्कार।

५—परन्तु केवल मन के परिष्कार से ही कुछ नहीं होता। साधक को कुछ विशिष्ट साधनाओं की भी आवश्यकता पड़ती है। जायसी का सूफी पंथ पर विशेष आप्रह है, यद्यपि वह प्रत्येक पंथ को उपादेय मानते हैं।

६—जायसी का सूफी पंथ उनकी अपनी खोज है। वह न शास्त्रीय सूफी पथ है, न केवल भावनात्मक रहस्यवादिता। उनके अंग हैं :

(क) नमाज़, तरीक़त, मारफ़त, हक़ीक़त और शरीअत। ये इस्लामी विधि-विधान हैं परन्तु जायसी ने इनकी नई व्याख्या की है, यद्यपि इनके संबंध मे विस्तार-पूर्वक उन्होंने नहीं लिखा।

(ख) उसमे योग की भाँति कायानिष्ठ ब्रह्म की भावना है। इस पिंड (शरीर) में ही अल्लाह समाया है। 'त्रिकुटि', 'चक्रभेद' इत्यादि यौगिक साधनाओं द्वारा उसे प्राप्त करना सम्भव है।

(ग) नैतिक आचरण और हृदय-मन की शुद्धता।

(घ) 'प्रेम की पीर' की साधना।

७—यह निश्चय है कि जायसी ने अंतिम अंग पर अधिक बल दिया है। सूफी तो एकमात्र प्रेम को जानता है। 'पद्मावत' में इस अंग को ही काव्य का विषय बनाया गया है। 'पद्मावत' की कहानी 'प्रेम की पीर' की ही कहानी तो है। इसी से जायसी अख़रावट मे प्रेम की साधना को विस्तारपूर्वक नहीं समझते। यह समझाने की बात भी नहीं है। इसे तो हृदय ही समझ

सकता है। फिर इस साधना के आनन्द का आभास गुरु-मुख होने से मिलता है। जायसी स्पष्ट कहते हैं—

भा-फल मीठ जो गुरु हुँत पावै
परन्तु गुरु भी साधक को कितनी दूर बढ़ा सकता है। इस
सकरे पथ पर तो अकेला ही चलना होगा। कवि कहता है—

कठिन मेल औ मारग सँकरा। बहुतन्ह खाइ फिरे सिर टकरा
मरन-खेल देखा सो हसा। होइ पतग दीपक महँ धँसा
तन-पतंग कै भिरिङ्ग कै नाई। सिद्ध होइ सो जुग जुग ताई
विनु जिउ दिए न पावै कोई। जो मरजिया अमर या सोई
इस कठिन प्रेमपंथ के साधक का यह एक चित्र कितना
सजग है—

प्रेम ततु तस लाग रहु करहु ध्यान चित बोंधि।

पारस जैस अहेर कहँ लाग रहै सर साधि ॥

यह प्रेम की एक लक्ष्य साधना ही रूपक-रूप में रत्नसेन की
पद्मावती-प्राप्ति की कहानी बन गई है।

८—अध्यात्म-दर्शन के रूप में जायसी औपनैषदिक ब्रह्मवाद
से भी आगे जाते हैं। वह कहते हैं—

जो किछु है सो है सब, ओहि विनु नाहिन कोइ

जो मन चाहा सो किया, जो चाहै सो होइ

वह जीव ब्रह्म और प्रकृति को तत्त्वतः एक मानते हैं, यद्यपि
कहीं-कहीं जहाँ वे प्रकृति को 'उसकी' छाया कहते हैं, वहाँ
प्रतिबिम्बवाद की झलक आ जाती है। जो अंतर है, वह माया के
कारण नहीं है, शैतान की करनी है। शैतान के भुलावे में
आकर जीव अपने जमाल और जलाल को भूल गया है। इसी
से उसके, अल्लाह के और प्रकृति के बीच में परदा पड़ गया

है। परन्तु जब सब अल्लाह ही अल्लाह है तो यह दुःख-सुख, पाप-पुण्य इत्यादि द्वैध-स्थिति क्यों है ? जायसी ने इसका भी उत्तर दे दिया है। जैसे जीवात्मा शुद्ध आनन्द-स्वरूप है पर शरीर के संयोग में दुःख आदि से युक्त दिखाई पड़ता है वैसे ही शुद्ध ब्रह्म संसार के व्यावहारिक क्षेत्र में भला-बुरा आदि कई रूपों में दिखाई पड़ता है—

सुनु चेला ! जस सब ससरु । ओहि भोंति तुम क्या विचारु
जौ जिउ क्या तौ दुख सौ भीजा । पाप के ओट पुनि सब छीजा
जस सूरुज उअ देख अकासु । सब जग पुनि उहै परगासु
मल औ मद जहाँ लगी होई । सब पर धूप रहैं पुनि सोई
मदे पर वह दिस्टि जो परई । ताकर मैलि नैन सौ ठरई
अस वह निरमल धरति अकासा । जैसे मिली फूल मई बासा
सबै ठाँव औ सब परकारा । ना वह मिला, न रहै नियारा

ओहि जोति परछाहीं, नवौ खंड उजियार
सूरुज चाँद कै जोती, उदित अहै ससर

इस प्रकार केवल अद्वैतवाद के आधार पर ही जायसी अपने अध्यात्म जगत का निर्माण करने में सफल हो जाते हैं। 'अखरावट' में एक स्थान पर 'माया' का उल्लेख अवश्य है, परन्तु शंकराद्वैत के अर्थों में नहीं। जायसी जीव ब्रह्म के बीच में माया का स्थिति ही नहीं मानते। "सूफियों के एक प्रधान वर्ग का मत है कि नित्य पारमार्थिक सत्ता एक ही है। यह अनेकत्व जो दिखाई पड़ता है वह उन्नी का ही भिन्न-भिन्न रूपों में आभास है। यह नामरूपात्मक दृश्य जगत् उसी एक सत् की बाह्य अभिव्यक्ति है। परमात्मा का बोध इन्हीं नामों और गुणों के द्वारा हो सकता है। इसी बात को ध्यान में रखकर जायसी ने कहा है—

दीन्ह रतन विधि चार, नैन, बैन, सरवन मुख
पुनि जब मेटिहि मार, मुहमद तब पछिताब मैं
(अखरावट)

इस परमसत्ता के दो स्वरूप हैं—नित्यत्व और अनंतत्व । दो गुण हैं—जनकत्व और जन्यत्व । शुद्ध सत्ता में तो न नाम हैं, न गुण । जब वह निर्विशेषत्व या निर्गुणत्व से क्रमशः अभिव्यक्ति के क्षेत्र में आती है तब उस पर नाम और गुण लगे प्रतीत होते हैं । इन्हीं नाम-रूपों और गुणों की समष्टि का नाम जगत् है । सत्ता और गुण दोनों मूल में जाकर एक ही हैं । दृश्य जगत् भ्रम नहीं है, उस परम सत्ता की आत्माभिव्यक्ति या अपर रूप में उसका अस्तित्व है । वेदांत की भाषा में वह ब्रह्म का ही 'कनिष्ठ स्वरूप' है । हल्लज के मत की अपेक्षा यह मत वेदांत के अद्वैतवाद के अधिक निकट है ।”
(जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृ० १३६)

इस मूल अद्वैतस्थिति के बीच में सब से बड़ा बाधक है अहंकार । 'अखरावट' में जायसी इस अहंकार के बाध और 'सोऽह' की अनुभूति का उपदेश देते हैं—

‘हौ हौं’ कहत सबै मति खोई । जौ तू नाहिं आहिं सब कोई
आपुहि गुरु सो आपुहि चेला । आपुहि सब औ आपु अकेला
‘सोऽह सोऽह’ बसि जो करई । जो बूके, सो धीरज धरई
जब चीन्हा तब और न कोई । तन, मन, जिउ, जीवन सब सोई
‘हौं हौं’ कहत धोख इतराहीं । जब भा सिद्ध कहाँ परछाहीं

इस प्रकार जायसी चित् और अचित् की एकता स्थापित करते हैं । परंतु शांकर वेदांत से उनका थोड़ा मत-भेद है । शांकर वेदांत विवृत्तिवाद का आश्रय लेता है । यह जगत् ब्रह्म का विवर्त्त या कल्पित कार्य रूप है । 'मूल सत्य द्रव ब्रह्म ही है

जिस पर अनेक असत्य अर्थात् सदा बदलने रहने वाले दृश्यों का अध्यारोप होता है। जो नाम-रूपात्मक दृश्य हम देखते हैं वह न तो ब्रह्म का वास्तव स्वरूप ही है, न ब्रह्म का कार्य का परिणाम ही है। वह है केवल अध्यास या भ्रांति-ज्ञान। उसकी कोई अलग सत्ता नहीं है। नित्य तत्त्व एक ब्रह्म ही है।' (वही, पृ० १४१) जायसी जीव-ब्रह्म प्रकृति को अभेद रूप से एक मानते हैं। विवृत्ति या माया को उनके सिद्धांत में कोई स्थान नहीं है। परन्तु कही-कही वे इस प्रकृति (सृष्टि) को ब्रह्म का दर्पण अवश्य कहते हैं। ऐसा चाहे रूपक या दृष्टांत के रूप में कहा गया हो, इससे उनके सिद्धांत में प्रतिबिंबवाद की थोड़ी झलक आ जाती है। परन्तु यह प्रतिबिंबवाद जायसी की मूल मनः-स्थिति नहीं है। "सरग आय धरती महँ छावा" कह कर वे स्वर्ग और पृथ्वी, ब्रह्म और जीव को दर्पण और परछाईं से अधिक निकट ले आते हैं। 'अखरावट' में दर्पण की उपमा लेते हुए भी उन्होंने प्रतिबिंबवाद नहीं, अद्वैतवाद को ही महत्व दिया है—

आपुहि आपु जौ देखै चहा । आपनि प्रभुता आपु से कहा
सबै जगत दरपन कै लेखा । आपुहि दरपन, आपुहि देखा
आपुहि बन औ आपु पखेरु । आपुहि सौजा, आपु अहेरु
आपुहि पुहुप फूलि बन फूलै । आपुहि भँवर बास-रस भूलै
आपुहि घट घट महँ मुख चाहे । आपुहि आपन रूप सराहे

दरपन झलक हाथ, मुख देखै, दूसर गनै
तस भा दुइ एक साथ, मुहमद एकै जानिए

इन पंक्तियों की व्याख्या करते हुए आचार्य शुक्ल लिखते हैं—
"आपुहि दरपन, आपुहि देखा"। इस वाक्य से दृश्य और दृष्टा,
ज्ञेय और ज्ञाता का एक दूसरे से अलग न होना सूचित होता

है। इसी अर्थ को लेकर वेदांत में यह कहा जाता है कि ब्रह्म जगत का केवल निमित्त कारण ही नहीं, उपादान कारण भी है। 'आपुहि आपु जो देखै चहा' का मतलब यह है कि अपनी ही शक्ति की लीला का विस्तार जब देखना चाहा। शक्ति या माया ब्रह्म ही की है, ब्रह्म से पृथक् उसकी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं। "आपुहि घट घट महँ मुख चाहै"—प्रत्येक शरीर में कुछ सौन्दर्य दिखाई पड़ता है वह उसी का है। किस प्रकार एक ही अखंड सत्ता के अलग-अलग बहुत से प्रतिबिंब दिखाई पड़ते हैं यह बताने के लिए जायसी यह पुराना उदाहरण देते हैं—

गगरी सहस पचास, जो कोउ पानी भरि धरै

सूरज दिपै अकास, मुहमद सब महँ देखिए

(वही, पृ० १४२) सच तो यह है कि अखरावट में हम एक साथ वैदाती अद्वैतवाद और सूफी प्रेमवाद (इश्क) का समन्वय पाते हैं। सूफी मतवाद का अधिकांश विकास भारतवर्ष में ही हुआ। अनेक प्रकार के सूफी संप्रदाय चल पड़े। प्रत्येक के अपने-अपने गुरु, अपने-अपने सिद्धांत और अपने-अपने ग्रन्थ थे। जायसी का सम्बन्ध चिश्ती परम्परा से है; परन्तु उनके कुछ अपने भी निश्चित सिद्धांत हैं। पूर्व प्रदेश में जायसी से पहले योग (नाथपंथ), ब्रह्मवाद (संतमत) और शून्यवाद (बौद्ध सिद्धमत) की महत्त्वपूर्ण धाराएँ चल रही थी। शून्यवाद परवर्ती युगों में योग और ब्रह्मवाद के साथ जुड़ गया। जायसी ने इन दोनों विचारधाराओं को अपने ग्रंथों में स्थान दिया। 'पद्मावत' में योग (नाथपंथ) की सारी साधना ही काव्य का विषय बनी है। यदि पद्मावती और रत्नसेन के प्रेम-विरह के भावमय चित्र हटा लिए जायें और उपसंहार के रूपक को निकाल लिया जाय, तो ग्रन्थ का पूर्वाद्ध योग-साधना के प्रतीक के रूप में भी उपस्थित किया जा सकता है। जायसी की यह

विशेषता है कि उन्होंने भारतीय दार्शनिक विचारधाराओं में से अपने समय की दो प्रचलित विचारधाराओं को अपना लिया है और इस्लामी सूफी सिद्धांतों में से बहुत कम लेकर केवल प्रेम और विरह की साधना पर बल दिया है।

जो हो, इसमें संदेह नहीं कि पद्मावत और अखरावट का हिन्दी के धार्मिक और दार्शनिक काव्य में बहुत बड़ा स्थान है। सीधी-सादी भाषा में वेदांत और तत्त्वदर्शन को जन-प्राप्य बनाने की पहली सफल चेष्टा इन ग्रन्थों में मिलेगी। 'राम-चरितमानस' के उत्तर कांड की विचार-गरिमा का बहुत कुछ श्रेय इन पूर्ववर्ती ग्रन्थों को है।

आखिरी कलाम

‘आखिरी कलाम’ (१५२५ ई०) जायसी की पहली प्राप्त रचना है और उसमे केवल एक इस्लामी तरुण के स्वर्ग-नरक कल्पना ही मूर्त मिलती है। साहित्य और दर्शन की दृष्टि से यह रचना कुछ भी महत्वपूर्ण नहीं है। फारसी ग्रन्थ-रचना की परम्परा मे ‘आखिरत नामा’ की एक परम्परा थी। यह ग्रन्थ इसी परम्परा का फल है।

पहली चौपाइयों में ईश्वर-वंदना और आत्मकथन के बाद जायसी कयामत के दिन की कहानी लिखना आरम्भ करते हैं। जब अन्त मे प्रलय होगी तब कोई धर्मी मनुष्य संसार में नहीं रह पायेगा। माया-मोह चला जायेगा। जैसे बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियों को पकड़ कर खा जाती हैं, वैसा ही व्यवहार मनुष्यो के बीच हो जायगा। न पंडित रहेंगे, न वेद-पुरान। न दान, न सत। तब सूर्य कृष्ण-वर्ण हो जायगा और सारी सृष्टि कृष्ण-वर्ण दिखलाई पड़ेगी। उस समय काल स्वयम् गदहे पर चढ़, एक हाथ मे जाल, एक हाथ मे खडग लिए इस संसार मे घूमता फिरेगा। तब खुदा धरती को आज्ञा देगा और उसके गर्भ से हीरे-मोती-मानिक निकल पड़ेंगे। लोग इन रत्नो के लिए परस्पर ही कट मरेंगे। जो बचेंगे वह एक अचरज से देखेगे कि मजारी (मार्जारी) नाम की एक बिल्ली प्रगट होगी। वह जिसको सूँघ देगी, वह मृत्यु को प्राप्त हो जायगा। जो फिर भी बच रहेंगे, उन्हें वह अपना प्रास बना लेगी।

फिर खुदा मैकाईल को आज्ञा देगा । पहले मेघ बरसेंगे । फिर जलते अङ्गारे । फिर पत्थर की बड़ी-बड़ी शिलाये । इस प्रकार चालीस दिन-रात तक होता रहेगा । तब जिबराईल ईश्वर (खुदा) की आज्ञा पाकर यह दृश्य देखने आयेगा । फिर असराफील को आज्ञा होगी । वह अपना विगुल बजायेगा । उस विगुल की आवाज से पृथ्वी-आकाश काँप उठेगा । पहली हाँ फूँक में पहाड़ गिर कर समतल के बराबर सपाट हो जायेंगे । समुद्र-पर्वतों से पट जायेंगे और चाँद-सूरज-तारे टूट-टूट कर पृथ्वी पर गिर पड़ेंगे । फिर अल्लाह चारों फरिश्तों (अज़राईल, जिबराईल, मैकाईल और इसराईल) को बुलायेगा । वह अज़राईल को तीनों अन्य फरिश्तों को बध करने की आज्ञा देगा । जब केवल अल्लाह और अज़राईल (यम) बच जायेंगे, तो अल्लाह कहेगा—जिबराईल, अब तुम्हें प्राण देना होगा । प्रभु की आज्ञा पाकर जिबराईल गिर कर बड़े कष्ट से प्राण छोड़ देगा । केवल अल्लाह इकेला रह जायेगा ।

फिर चालीस बरस बीत जायेंगे ।

तब अल्लाह मन में सोचेगा—मेरा नाम लेने वाला तो अब कोई रहा नहीं । इन्हें फिर जीवित करूँ और इनके कर्मों की गाथा इनके मुह से सुनकर इन्हें नरक-स्वर्ग दूँ । इस प्रकार सोच कर अल्लाह ने पहले अपने चार सेवक जीवित किए—वही चारों फरिश्ते जिबराईल, मैकाईल, असराफील, और अज़राईल । 'अज़राईल' को आज्ञा हुई, नबी (मुहम्मद) को पुनर्जीवित करो । वह सारे ससार में पुकार आया, परंतु कहीं कोई आवाज नहीं आई । तब अल्लाह ने कहा—धरती का सूँघते चलो । जहाँ से सुगंध आती हो, वही मुहम्मद है । इस बार अज़राईल ने मुहम्मद को ढूँढ़ निकाला । मुहम्मद के साथ साथ लाखों-करोड़ों इंसान जी उठे । सब नंगे थे । उनकी आँखें तालू

में लगी थीं। कोई किसी को देखता नहीं था। यह सब स्वर्ग की देखते हुए तीस हजार कोस लम्बे सरात के पुल पर चले। उनके एक ओर मुहम्मद चले, दूसरी ओर चले जिबराईल। जो पापी थे, वह तो पुल के नीचे पीप के समुद्र (नरक) में गिर गये और जो नेक (अच्छे) थे, वह इस पुल के पार हो गये।

अल्लाह की आज्ञा से सूर्य फिर दैदीप्यमान हुआ और उसके प्रकाश में खड़े प्राणियों के जीवन का लेखा-जोखा लिया जाने लगा सूर्य की तपन से अनेक प्राणी प्यास के कारण व्याकुल हो रहे थे, परंतु जो भगवान के भक्त थे, धर्मी थे, उनके सिर पर छाँह होने कारण उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं था। अनेक पैगम्बर भी वहाँ थे। वे सब छाँह में बैठे थे। परंतु रसूल (मुहम्मद) तो अपार करुणामय है। वे छाँह में नहीं बैठे। उनका हृदय तो उन पापियों के साथ था जो धूप में तप रहे थे। अल्लाह ने मुहम्मद साहब को आज्ञा दी कि वे अपने अनुयायियों को सामने लाये जिनसे उनके धर्म-कर्म का जोखा हो। मुहम्मद साहब को धूप से तपते हुए गुनहगारों की पड़ी थी। उन्होंने पूछा—यदि आज्ञा हो तो पहले इन दुखियों को लाऊँ। अल्लाह ने कहा—इन्हे नहीं। इन्हे भी सजा देना चाहता हूँ। मुहम्मद का हृदय रो रहा था। उन्होंने एक-एक पैगम्बर के पास जाकर उनकी ओर से अल्लाह से बिनती करने को कहा। परंतु कोई तैयार नहीं हुआ। आदम ने कहा—मैं तो आप दुखी हूँ। गेहूँ खाकर मैं आप मरुट में पड़ गया। मूसा ने कहा—मुझे अपनी पड़ी है। फराऊ बादशाह से मैंने जो ऋगड़ा मोल लिया था, उसका लेखा-जोखा देना है। ईसा, इब्राहीम और नूर ने भी इसी तरह उत्तर दिया। दयावान रसूल एक पैगम्बर के पास जाते, फिर दूसरे के पास धाते, परंतु उनकी कोई नहीं सुनता।

अब रसूल ने खुदा से प्रार्थना की। उन्हें हज़रत के अनुयायियों पर गुस्सा आ रहा था। इन्होंने ही तो हसन-हुसैन को मारा था। उन्होंने कहा, सुनो मुहम्मद, ये तुम्हारे आदमी फ़ातिमा बीबी से ऋण और इन्होंने हसन-हुसैन को मारा। फ़ातिमा बीबी ही इन्हें क्षमा कर सकती हैं। उन्हें ढूँढ़ कर लाओ। सब जगह ढूँढ़ डाली गई, परंतु बीबी फ़ातिमा नहीं मिली। तब खुदा ने आज्ञा दी और बीबी फ़ातिमा हसन-हुसैन को लेकर खुदा के सामने हाज़िर हुईं। फ़ातिमा ने कहा—हे खुदा, तुम सब का न्याय करने बैठे हो। पहले मेरा न्याय करो। इन्होंने मेरे हसन-हुसैन को क्यों मारा? मेरे हसन-हुसैन को यज़ीद ने क्यों मारा था? पहले मेरा न्याय हो लेने दो। नहीं तो मेरे शाप से सारा आसमान जल जायेगा। खुदा ने रसूल से कहा—बीबी फ़ातिमा को समझाओ, नहीं तो तुम्हारे सारे आदमी जल जायेंगे। रसूल ने बड़ी देर तक फ़ातिमा को समझाया। फ़ातिमा ने देखा—और रसूल (पैगम्बर) तो छाँह में बैठे हैं, यह रसूल (उनके पिता) धूप में मारे-मारे फिर रहे हैं। उन्हें दया आ गई। इन्होंने कहा—पिता, तुम धूप में मारे-मारे क्यों फिर रहे हो? उन्होने उत्तर दिया—मेरे आदमी संकट में हैं। मैं छाँह में कैसे बैठूँ। फ़ातिमा पानी-पानी हो गई। उसने रसूल के अनुयायियों को खुदा से माफ़ करा दिया, केवल यज़ीद नरक में डाल दिया गया।

इस खुशी में सब को खुदा ने दावत दी। इस दावत में किसी को कुछ खाना नहीं पड़ता था, जो चाहता स्वयं मुँह में चला जाता। खाने के बाद जन्नत की शराब पिलाई गई। उस आनंद का क्या कहना। अंत में मुहम्मद ने खुदा से दर्शन की प्रार्थना की। ज्योति के रूप में अल्लाह ने मुहम्मद और उनके अनुयायियों को दर्शन दिये परंतु देखने की शक्ति न होने से

सब बेहोश हो गये और तीन दिन तक बेहोश रहे। तीसरे दिन जिबराईल ने सब को जगाया और सुन्दर वस्त्र पहना कर उन्हें बहिरत ले गये। वहाँ सब को हूरें-परियें मिली।

बहिरत में अनंत विलास था। न मृत्यु थी, न नीद, न दुख, न व्याधि। केवल आनन्द, केवल उपभोग।

यह हुई ‘आखिरी कलाम’ की कथा।

स्पष्ट है कि इस ‘आखिरी कलाम’ में हमें जायसी का ‘आखिरी कलाम’ (अंतिम रचना) नहीं ढूँढना चाहिये। यह वास्तव में हश्र के दिन की कथा है। कयामत (प्रलय) के दिन क्या होगा, मुहम्मद (रसूल) की कृपा से गुनहगार कैसे माफ कर दिये जायेंगे, यह कवि को बताना है। जान पड़ता है जायस। शिया थे। सूफीमत शिया मुसलमानों में विशेष रूप से प्रिय रहा है। इसी से यहाँ जायसी ने हसन-हुसैन की मृत्यु के लिये रसूल के शिष्यों को गुनहगार ठहराया है और उन्हें उसी समय क्षमा किया है जब रसूल पर दया करके बी फातिमा ने उन पर अनुग्रह किया है। यह सुन्नी विचारधारा नहीं है, शिया विचारधारा है।

कविता और विचार धारा दोनों की दृष्टि से इस ग्रंथ में हमें अधिक नहीं मिलता। यह एक सीधी-सादी रचना है। प्रौढ़ता के कोई भी चिन्ह हमें इसमें नहीं मिलेंगे, अतः हम इसे जायसी की अंतिम रचना किसी भी प्रकार नहीं कह सकते। इसकी महत्ता इसका प्रारंभिक अंश है जिससे कवि के जीवन वृत्त पर प्रकाश पड़ता है। पद्मावत में भी जायसी ने अपने जीवन-वृत्त का उल्लेख किया है। उससे इस ग्रंथ के उल्लेखों की पुष्टि ही होती है। जायसी ने जीवन-वृत्त और उनकी गुरु-परम्परा के सम्बन्ध में विचार करते हुए हमने इस प्रारंभिक अंश में लाभ उठाया है।

इन प्रारंभिक प्रसंगों के अतिरिक्त कवि का बहिश्त (स्वर्ग) का वर्णन अवश्य अच्छा बन पड़ा है। कवि दूलह के रूप में मुहम्मद की कल्पना करता है और दुलहन के रूप में सब दैन-दारों को लेता है—

जैसे नबी सँवारे, तैसे बने पुनि साज
 दूलह जतन मुहम्मद बिहिस्त करै सुख राज
 तानब छत्र मुहम्मद माथे । ओ पहिरैं फू नन्ह बिनु गोंथे
 दूलह जतन होब असवारा । लिए बरात जैहें संसारा
 रचि-रचि अछरिन्ह कीन्ह सिगारा । बाल सुबाल उठे यह कारा
 आज रसूल बियाहन ऐहें । सब दुलहिन दूलह सहुं नैहें
 आदति करि सब आगे ऐहें । नन्द सरोदन सब मिलि गेहें
 मँदिरन्ह होइहि सेज बिछावन । आजु सबहि कहँ मिलिहें भवन
 बाजन बाजै बिहिस्त दुवारा । भीतर गीत उठै भनकारा
 बनि बनि बैठी अछरी, बैठि जोहें क विलास
 बेगिहि आउ मुहम्मद, पूजै मन कै आस

इस प्रकार का मधुर संबन्ध कबीर और वैष्णव भक्ति काव्य में प्रचुरता से मिलता है परन्तु इस्लामी काव्य में यह प्रचुर मात्रा में है। 'आखिरी दिन' की मूल कल्पना इस्लामी होते हुए भी कवि की इस प्रकार की मधुर भावना ने उसमें बहुत कुछ नवीनता उत्पन्न कर दी है। स्वर्ग की अक्षय सुषमा और उसके अपार सुखों का वर्णन करता हुआ कवि इस प्रकार समाप्त करता है—

नित विरीत, नित नव नव नेहु । नित उठि चौगुन होइ सनेहु
 नितइ नित जो बारि बियाहै । बीसौ बीस अतिक ओहिं चाहे
 तहाँ त मीचु, न नीद दुख, रह न देह महँ रोग
 सदा अनन्द 'मुहम्मद', सब सुख मानै भोग

स्वर्ग की यह कल्पना वैष्णव सूरदास की इस नित्यधाम
(गोलोक) की कल्पना से भिन्न नहीं है ।

नित्य धाम वृन्दावन श्याम
नित्य रूप राधा ब्रजवाम
नित्य रास जल नित्य बिहार
नित्य मानखडिताभिसार
ब्रह्म रूप ऐई करतार
करणहार त्रिभुवन संसार
नित्य कुज मुख नित्यहि डोर
नित्यहि त्रिविधि समीर भुकोर
सदा बसन्त रहत तहँ बास
सदा हर्ष जहँ नाहि उदास

(सूरसागर स्क० १०, पद ७२)

उपसंहार

जायसी के तीनों ग्रंथों पर हम अलग-अलग विचार कर चुके। हमें यहाँ सामूहिक रूप से जायसी की काव्य-प्रतिभा पर विचार करना है। यह निश्चित है कि अन्य संत एवं भक्त कवियों की भाँति साहित्य जायसी की पहली प्रवृत्ति नहीं है। वे पहले साधक हैं। साहित्य में उनकी साधना की फलक मात्र ही दिखलाई पड़ती है। आज हम उनकी साधना को पूरा-पूरा तौल नहीं सकते, परंतु उसकी भाँकी अवश्य पा सकते हैं। (हो सकता है, उनकी रचना में साहित्य-रस अधिक नहीं हो, परंतु साधना का रस उसमें है, 'प्रेम की पीर' उसमें है, इसमें किंचित भी सदेह नहीं है। 'पद्मावत' की अनेक पक्तियाँ ऐसी हैं जो हमें इतना भाव-विभोर कर देती हैं कि हमें अपना अस्तित्व ही भूल जाता है। विरह की जिस अपार वेदना को सूरदास ने 'भ्रमरगीत' में अंकित किया है, वही रत्नसेन और पद्मावती की कहानी में गुँथी हुई है। प्रेम और विरह का जैसा चित्रण जायसी में है, वह विश्व-साहित्य में भी एक अत्यंत दुर्लभ वस्तु है।)

परंतु जायसी की साधना साहित्य में होने पर भी उसकी श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति साहित्य में ही हुई है। अतः साहित्य के रूप में उसका अध्ययन करना भी आवश्यक है। साधक के रूप में जायसी पर हम पहले अध्यायों में विशद रूप से विचार कर चुके हैं। यह स्पष्ट है कि जायसी 'बाशिरा सूफी' है, जिर्दीक नहीं। वह सूफी शास्त्रीय पद्धति की अभ्यात्म साधना को

अपना लक्ष्य स्वीकार करते हैं। अनेक शास्त्रीय प्रवृत्तियों की व्याख्या उन्होंने 'अखरावट' में की है। परंतु वे केवल सूफी ही नहीं हैं। भारतीय वेदांत और योग की साधना से भी वह परिचित हैं और इन दोनों साधनाओं से न जाने कितनी बातें उन्होंने ग्रहण की है। परंतु मूल रूप से वह अल्लाह के प्रेम और विरह को ही सब से बड़ी साधना मानते हैं। यह प्रेम और विरह प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में उत्पन्न नहीं होता। अल्लाह जिसे अपना दर्शन देना चाहता है उसी के हृदय में उसका प्रेम उत्पन्न होता है। जायसी कहते हैं—

थल-थल नग होहि जेहि जोती । जल-जल सीप न उगहि मोती
 बन-बन बिरिछ न चदन होई । तन तन विरह न उपजे मोई
 जेहि उपना सौ औटि मरि गयऊ । जनम निनार न कबहूँ भयऊ
 जल अंबुज, रवि रहैं अकासा । जो इन्ह प्रीति जानु, एक पासा
 (नागमती के विरह में जो तीव्र वेदना है, जो तीव्र उत्कंठा है, वह उसे साधारण लौकिक प्रेम से उठाकर असाधारण आध्यात्मिक प्रेम बना देती है। इस प्रेम में वासना की तो छाया भी नहीं है। यह तो वह माध्यम है जिसके द्वारा दो हृदय एक हो जाते हैं, मनुष्य की आत्मचेतना विश्व-चेतना के आलिंगन में बंध जाती है। अल्लाह से बंदा (जीव, साधक) दूर है, परन्तु इस दूरी से क्या होता है —

बमै मीन जल धरती, अवा बसै अकास
 जो पिरित पै दुवौ महँ अत होहि एक पास)

सारे पद्मावत में इसी अलौकिक प्रेमतत्त्व की व्याख्या की गई है। वह अलौकिक प्रेमतत्त्व इस सारी सृष्टि में समाया हुआ है। सृष्टि का सारा बहु-विधि विलास, प्रकृति का सारा वैभव उसी एक ज्योति का अनेकानेक विलास है—

बहुतै जोति जोति ओहि भही

रवि, ससि, नखत दिपहि ओहि जोति । रतन पदारथ, मानिक मोतो
जहँ जहँ विहँसि मुभावहि हँसी । तहँ तहँ छिटकि जोति पगसी

नयन जो देखा कवल भा, निरमल नीर सरीर

हंसन जो देखा हस या, दसन-जोति नग हीर

स्वर्ग-पृथ्वी, मृत्यु-अमृत्यु, जड़-चेतन जहाँ भी जो भी है,
वह प्रेम के वाणों से बंध गया है और प्रियतम से मिले बिना
उसका निस्तार नहीं है। जायसी कहते हैं—

उन बानन्ह अस को जो न मारा ? वेधि रहा सगरौ ससारा
गगन नखत जो जाहिं न गने । वै सब बान ओहि के हने
वरती बान वेधि सब राखी । साखी ठाढ देहि सब साखी
रोवँ रोवँ मानुस तन ठाढ़े । सूतहि सूत बेध अस गाढे

बरुनि-चाप अस ओपँह बांधे रन बन-ढाँख

सौजहि तन सब रोवों, पखहि तन सब पाँख

उन वाणों ने किसे नहीं मारा ? सारा संसार तो उनसे
बिधा हुआ है। आकाश के ये इतने नक्षत्र जो गिनने में नहीं
आते उसी के वाणों के बिधे हैं। यह सारी पृथ्वी उसके वाणों ने
बेध रखी है। दूर्वादल-लता-वृक्ष इसके साक्षी हैं। मनुष्य के
बदन में रोम के रूप में यह उसके वाणों की तो छिदे खड़े हैं।
पलकों की तरह तीक्ष्ण तीर जिससे निकलते हैं ऐसा धनुष उसके
पास है। बन के ढाक के पेड़ उसने उन तीरों से बंध दिये
हैं। वही तीर मनुष्य के शरीर में रोम बन कर चुभे हैं, वही
पक्षी के पंख बने। पृथ्वी से स्वर्ग का वियोग जीव-ब्रह्म के
महावियोग का प्रतीक है। ब्रह्म से अलग होकर जीव और
प्रकृति को जो महान दुःख हो रहा है, उसके कारण रोम-रोम,
कण-कण कन्दनशील हैं। प्रकृति के सारे तत्त्व उस 'महामिलन'

के किए तपस्या कर रहे हैं जिसमे वह विराट से एकाकार हो जायेगे। जायसी कहते है—

धरती सरग मिले हुत दाऊ। केह मिनार कै दीन्ह बिछोऊ
सूरज बूडि उन हाइ ताता। औ मजीठ टेसू बन राता
भा बमत, राती बनसपती। औ राते सब जोगी जती
भूमि जो भीजि भएउ सब गेरू। औ राते सब पखि पखेरू
राती सती, अग्नि सब काया। गगन मेघ राते तेह छाया
धाइ जो बाजा कै मन साधा। मारा चक्र, भएउ दुइ आधा
चौद सुरुज और नखत-तराई। तेहि डर अंतरिख फिरहि सजाई
पवन जाह तह पहुँचै चहा। मारा तैस लौटि मुँह रहा
अग्नि उठी, जरि बुर्झा निआना। धुआँ उठा, उठि बीचि बिलाना
पानि उठा, उठि जाह न बूआ। बहुरा रोइ, आइ मुँह चूआ
पृथ्वी और स्वर्ग दोनो आदि मे मिले हुए थे। किसने
अलग करके दोनो का बिछोह कर दिया इस वियोग के
कारण ही सूर्य तप कर अंत मे डूब जाता है। टेसू का बन रात
मे जैसे दावाग्नि मे जल उठता है। बसंत मे सारी बनसपतियोँ
लाल-लाल हो जाती हैं। सारे योगो-यती उसके अनुराग मे रँगे
हैं उसके अनुराग के जल मे भीग कर पृथ्वी लाल हो गई,
पक्षी लाल हो गये, सतियो ने अपने शरीर अग्नि मे होम दिये
और आकाश के मेघ रक्तवर्ण हो जल उठे। इसके बाद जायसी
भावुक रहस्यदर्शी की भाँति प्रकृति की वियोग साधना का बड़ा
सुन्दर वर्णन करते हैं और उसे जीव ब्रह्म-एक्य का प्रतीक
बनाते हैं। इस महामिलन मे जीव की अनन्य विरह स्थिति का
लोप हो जाता है। वह अद्वैतस्थिति को प्राप्त हो जाता है।
पद्मावति और नागमति के रत्नसेन से मिलने मे जीव ब्रह्म के
महामिलन का रूपक खड़ा किया गया है। पद्मावति अपनी
सखियोँ से कहती है—

आजु मग्म मैं जानिउँ सोई । जस पियार पिउ और न कोई
 हिये छोँह उपना औ' सीऊ । पिउ न रिसाउ लेउ बस जीऊ
 करि सिगार तापहँ का जाऊँ । ओड़ी देवहुँ ठावहिँ ठाऊँ
 जौ त्रिउ महुँ तो उहै गियारा । तन मनु सौ नहिँ होइ निनारा

यहाँ कथा रत्नसेन-पद्मावती की लौकिक कथा नहीं रह जाती, वह कथा से और बड़े अर्थ प्रगट करन लगती है। यह नये अर्थ ही जायसी की कथा के प्राण हैं। कथा के अंत में जायसी ने उस पर स्पष्ट रूप से रूपरूप आगोप किया है और उसे लौकिक स्तर से ऊपर उठा कर अलौकिक और आध्यात्मिक बना दिया है। परंतु स्वयं कथा के बीच-बीच में जो अनेक आध्यात्मिक संकेत हैं, वह इस रूपक से भी अधिक महत्वपूर्ण हैं।

(सच तो यह है कि जायसी की प्रेरणा मूल रूप से आध्यात्मिक होने पर भी उसमें जन-मन-रंजन के अनेक गुण हैं और वह एक ही साथ मृत्यु और अमृत्यु, पृथ्वी और स्वर्ग को छूती है। उसका कथापत्र लोक-रंजन की समस्त प्रवृत्तियों से पुष्ट है, उसका अध्यात्म पत्र एक ही साथ वेदांत, योग और सूफी मतवादों को स्पर्श करता है। मध्य युग में दर्शन, धर्म, काव्य और लोक-रंजन के बीच की भित्तियाँ गिर गई थीं। जो लोक-रंजन था, वही काव्य का उच्चातिउच्च उन्मेष बन गया और उसी में धर्म और दर्शन के बड़े-बड़े बत्त्व, बड़े-बड़े सिद्धांत समाविष्ट हुए। रामचरितमानस, सूरसागर और पद्मावत इस दर्शन-धर्म काव्य-लोक-रंजन के तीन सुन्दरतम योगायोग हैं।)

(जैसा हम पहले कह चुके हैं जायसी के सामने साहित्य अधिक नहीं था। वे स्वयं पांडित और शास्त्रज्ञ नहीं जान पड़ते। जो ज्ञान उन्होंने प्राप्त किया उसका संग्रह लोक-जीवन से हुआ

होगा। इसी से पद्मावत का साहित्य पक्ष रामचरितमानस के साहित्यपक्ष की भौति पुष्ट नहीं है। जायसी के सामन तान ही आदर्श थे (१) पूर्ववर्ती प्रेमाख्यानक काव्य, (२) कबीर काव्य, (३) मसनवी काव्य। संभव है, वह अधिक मसनवी काव्यों में परिचित न हो, परंतु अपने ग्रंथों में मसनवी की अनेक शैलियाँ उन्होंने अपनाई हैं। इममें यही जान पड़ता है कि वह किसी न किसी रूप में 'मसनवी' शैली में पूर्णतः परिचित थे। परंतु जायसी का सब से बड़ा बल यह है कि वह लोक-जीवन के पूर्ण पंडित थे। जहाँ से भी, जैसे हो सका, उन्होंने अपनी ज्ञान की गठरी बाँध ली और उसका सुअवसर पर सबमें सुन्दर उपयोग किया। लोक-जीवन में शिक्षाप्रद सूक्तियों, नैतिक तत्त्वों, मुहावरों और किम्बदंतियों का प्राधान्य रहता है। जायसी के काव्य में इन सब का विशद प्रयोग है। जान पड़ता है, जायसी केवल लोक-जीवन की इन प्रिय वस्तुओं से परिचित ही नहीं थे, वे स्वयं भी बड़े वाग्चतुर थे। प्रातःकाल कौवे काँव-काँव करने लगते हैं। जायसी कहते हैं—

भोर होइ जो लागै उठहिं रोर कै काग
मसि छूटै सब रैन की कागहि केर अभाग

वृद्ध मनुष्य पृथ्वी की ओर झुक कर चलता है या उसका सिर डुलने लगता है। अब जायसी की उक्ति देखिये—

मुहमद बिरिध जो नह चलै, काहा चलै मुँह रोइ
जोवन-रतन हेरान है, मनु धरती पर होइ
× × ×

बिरिध जो सीस डौलावै, सीस धुनै तेहि रीस
बूढी आऊ होहु तुम्ह, केह यह दीन्हि असीस

मिट्टी पर एक उक्ति देखिये—

माटी मोल न किछु लहै ओ माटी सब मोल
दिस्टि जो माटी सौ करै माटी होइ अमोल

(मिट्टी = मिट्टी; मानव-शरीर) साधारण मिट्टी का कोई मूल्य नहीं, वह अत्यंत तुच्छ है, परंतु मिट्टी का बना यह मानव शरीर अमूल्य है। मिट्टा पर भी यदि दृष्टि करे अर्थात् तुच्छ से तुच्छ का भी अंतरकार न करे तो मिट्टी (शरीर) अमूल्य हो जाय। इसी प्रकार प्रेम की व्याख्या सुनिये—

बसै मीन जल धरती अवा बसै अकास
जौ पिरीति पै हुवौ महँ अत होंहि एक पास

प्रेम-सम्बन्धी भाव - व्यञ्जना के भीतर एक चमत्कार-योजना देखिये—

यह तन जारौ छार कै कहौ कि पवन उडाय
मकु तेहि मारग उडि परै कत धरै जहँ पाय

इसी प्रकार की एक दूसरी भाव-व्यञ्जना वस्तु-चित्रण के बीच में स्थान-स्थान पर मिलेगी—

चकई बिछुरि पुकारै, कहौ मिलौ हो नाह
एक चोद निसि मरग महँ दिन दूसर जहा माहँ

इस तरह की सूक्तियों से काव्य में एक विशेष प्रकार का आनंद आ जाता है। प्रेम-प्रसंग में इस प्रकार की सूक्तियों की एक परम्परा प्राचीन काल से चली आती थी। सूरदास के भ्रमरगीत काव्य में हम इस परम्परा का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण पाते हैं।

परन्तु सूक्तियाँ ही सब कुछ नहीं हैं। अनेक प्रसंगों के बीच में जायसी ने उच्च नैतिक तत्त्व की व्याख्या की है और दान, नम्रता, उपकार, साहस-प्रभृति उच्च वृत्तियों को प्रशंसा-योग्य बताया है। दान की महिमा के सम्बन्ध में कवि कहता है—

धनि जीवन औ ताकर हीया । ऊँच जगत मँहँ जाकर दीया
दिया जो जप तय सब उपराहों । दिया वराबर जग किछु नाहीं
एक दिया ते दसगुन लहा । दिया देख सय जग मुख चहा
दिया करे आगें उजियारा । जहों न दिया तहाँ अँधियारा
दिया मँदिर निसि करै अँजोरा । दिया नाहि, वर मूषह चांग

नम्रता के सम्बन्ध मे कवि का कथन है—

एहि सेति बहुरि जूझ नहि करिए । खडग देखि पानी होइ ढरिए
पानिहि काह खडग के धारा । लौटि पानि होइ सोइ को मारा
पानी केर आग का करई । जाह बुभाय जौ पानी परई

उपकार तो सत-मत का मूल मंत्र ही है—

मँदहि भल जो करै भल सोई । अतहि भना भले कर होई
शत्रु जो बिन देइ चाहे मारा । दोजिय लोन जानि विष-हारा
बिष दोन्हे विसहर होइ खाई । लोन दिए होइ लोन दिलाई
मारे खडग खडग कर लेई । मारे लोन नाह सिर देई

**और कही-कही तो यह सूक्तियाँ आदर्श वाक्य जैसी सूत्रबद्ध
हो जाती हैं जैसे साहस के सम्बंध मे यह उक्ति—**

साहस जहाँ सिद्धि तहाँ होई

परंतु जायसी लोक-व्यवहार मे पटु व्यक्ति थे, वे केवल संत
ही नहीं थे । अतः जहाँ उच्च वृत्तियों की प्रशंसा है, वह लोक-
संग्रह के भाव से मनुष्य की अन्य मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों
की परख भी उन्होंने जहाँ-तहाँ की है । द्रव्य की महिमा के
संबंध मे कवि कहता है—

दरब ते गरब करै जो चाहा । दरब ते धरती सरग वेसाहा
दरब ते हाथ आव कविलासू । दरब ते अछरी छोंड़ न पासू
दरब ते निरगुन होइ गुनवता । दरब ते कुबुज होइ रूपवता
दरब रहै मुँह, दिपै लिलारा । अस मन दरब देइ को पारा

इस तरह की स्वाभाविक उक्तियाँ संत काव्य में नहीं मिलेगी, परंतु जायसी तो सब कुछ परखे बैठे थे। दुख के सम्बंध में उनकी यह उक्ति देखिये—

दुख जारै, दुख भूँजै, दुख खोवै सब लाज
गाजहि चाहि अधिक दुख, दुखी जान जेहि वाज

इस एक दोहे में हुखी प्राणों की जितनी अनुभूति भर दी गई है, वह बीसियों पंक्तियों में नहीं समा सकती थी।

परंतु जायसी की साहित्यकला की नीब और भी दृढ़ है। वह फुटकल प्रसंगों और लोक-ज्ञान के चुटकलों के कारण ही प्रसिद्ध नहीं हैं। उनकी भाषा, उनके साहित्यिक प्रयोग, उनके अलंकार, उनका रस-निरूपण सब उन्हें उच्च श्रेणी का कवि सिद्ध करते हैं। पद्मावत की भूमिका में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जायसी की भाषा पर विस्तारपूर्वक विचार किया है। वह लिखते हैं—“जायसी की भाषा बहुत ही मधुर है, पर उसका माधुर्य निराला है। वर माधुर्य “भाषा” का माधुर्य है, संस्कृत का माधुर्य नहीं। वह संस्कृत की कोमलकांत पदावली पर अवलंबित नहीं। उसमें अवधी अपनी निज की स्वाभाविक मिठास लिए हुए है। ‘मंजु, ‘अमंड’ आदि की चासनी उसमें नहीं है। जायसी की भाषा और तुलसी की भाषा में यही बड़ा भारी अंतर है। जायसी की पहुँच अवध में प्रचलित लोक-भाषा के भीतर बहते हुए माधुर्य-स्रोत तक ही थी, पर गोस्वामा जी की पहुँच दीर्घ-संस्कृत परंपरा द्वारा परिपक्व चाशनी के भांडागार तक भी पूरी-पूरी थी। दोनों के भिन्न प्रकार के माधुर्य का अनुमान नीचे उद्धृत चौपाइयों से हो सकता है—

[१] जब-हुँत कहिगा पखि सँदेसी। मुनिउँ की अखा है परदेसी
तब हुँत तुम्ह बिनु रहै न जीऊ। चातक भइउँ कहत ‘पिउ पीऊ’

भइउँ चकोरि सो पंथ निहारी । समुद समीप कम नयन पमारी
भइउँ विरह जलि कोइलि कारी । डार डार जिमि कृकि पुकारी
—जायसी

[२] अमिय मूरिमय चूरन चारू । समन सकल भव रुज परिवारू
सुकृत सभुतन विमल विभूती । मजुल मगल मोद प्रसूती
जन-मन-मजु मुकुर मल हरनी । किए तिलक गुनि गन बस करनी
श्री गुरु पद-नख मनिगन जोती । सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती
—तुलसी

यदि गोस्वामी जी ने अपने “मानस” की रचना ऐसी ही भाषा
में की हाती जैसी कि इस चौपाई की है—

उदधि आइ तेइ बधन कीन्हा । इति दसमाथ अमर पद दीन्हा

तो उसकी और ‘रामचरितमानस’ की एक भाषा होती । पर
जायसी में इस प्रकार की भाषा ढूँढ़ने को एकाध जगह मिल
सकती है । तुलसीदासजी में ठेठ अवधी की मधुरता भी प्रसंग
के अनुसार जगह-जगह मिलती है । साराश यह कि तुलसीदासजी
को दोनों प्रकार की भाषाओं पर अधिकार था और जायसी
को एक ही प्रकार की भाषा पर । एक ही ढङ्ग की भाषा की
निपुणता उनकी अनूठी थी । अवधी की खालिस, बे-मेल मिठास
के लिए ‘पद्मावत’ का नाम बराबर लिया जायगा ।” (जायसी
ग्रंथावली, पृ० १६६-१६७) १६वीं शताब्दी की अवधी भाषा
का लोक-व्यवहृत रूप हमें जायसी में मिलता है, इसमें सदेह
नहीं । उसी के द्वारा हम स्वयंभू के अपभ्रंश काव्य से अपनी
भाषा की परंपरा जोड़ सकते हैं । इस दृष्टि से जायसी का
ऐतिहासिक महत्व और बड़ा हो जाता है । सूरदास और
तुलसीदास शास्त्रविद् पंडित थे । उनके काव्य में स्थान-स्थान पर
लोकवाणी अवश्य मिलती है, परंतु उनके अधिकांश काव्य में

भाषा का सामान्य रूप नहीं मिलता। संस्कृत भाषा के तत्सम शब्दों और साहित्य धर्म-दर्शन की प्राचीन शब्दावलि के समावेश के कारण उसका रूप ही दूसरा हो जाता है। यह बात उनके काव्य को अपेक्षाकृत अधिक प्रौढ़ता प्रदान करती है, परंतु सरल, लोक व्यवहार की भाषा का आनंद जाता रहता है।

इस सामान्य लोक-व्यवहार की भाषा में जायसी ऊँचे-ऊँचे विचार भरने सफल हो सके हैं, यह उनके लिए श्रेय की ही बात होगी। परंतु और भी अधिक श्रेय की बात यह है कि उन्होंने अपनी कथा को इसी भाषा के द्वारा रसबिद्ध किया है। पद्मावति के वियोग का यह चित्र देखिये—

पद्मावति बिनु कत दुहेली । बिनु जल कँवल सूखि जस बेली
गाढी प्रीति सो मोसौँ लाए । दिस्ज? कत निचित होइ छ्वाए
सो दिस्ली अस निबहुर देस । कोइ न बहुरा कहै सँदेसू
जा नवनै सो तहाँ कर होई । का आवै किछु बान न सोई
अगम पंथ पिय तहाँ सिधावा । जारे गएउ सौँ बहुरि न आवा
कुवा धार जल जैम बिछोवा । डोल भरै नैन न्ह धनि रोवा
लेजुरि भई नाह बिनु तोहीं । कुवों परी, धरि काढसि मोहीं

नैन-डोल भरि ठारै, हिये न आगि बुभाय

धरी धरी जिउ आवै, धरी-धरी जिउ जाय

नीद-नौंभीर कहों हो पीया । तुम्ह बिनु फाटे सरवर हीया
गएहु हेराइ, परेहु केहि हाथा । चलत सरोवर लीन्ह न साथ
चरत जो पंखि केलि कै नीरा । नीर घटे कोइ आव न तीरा
कँवल सूख, पखुरी बेहरानी । गलि गलि के मिलि छार हेरानी
बिरह-रेत कचन-तन लावा । चून चून के खेह मेरावा
कनक ज। कन-कन होइ बेहराई । पिय कहँ, छार समैटे भाई
बिरह पवन वह छार सरीरू । छारहि आनि मेरावहु नीरू

अबहुँ कि कावहु कै मया, विथुरी छार ममेट
नइ काया, अवतार नव हाइ तुम्हारे भेट

इसी भाषा मे कवि ऊँची से ऊँची कल्पना सजा कर रख सकता है। पानीपत के युद्ध मे बाबर ने पहले-पहल तोपो का प्रयोग किया था। जायसी इस नये अस्त्र से पूरी तरह परिचित थे। उन्होंने परंपरा के ढङ्ग पर नारी-रूप मे इस नये अस्त्र को कल्पना की भूमि पर उतारा है—

कहाँ सिंगार जैसि वै नारी । दारू पियहि जैमि म्त्वारी
उठै आगि जौ छौडहिं सोसा । धुआँ जौ लागै जाइ अकासा
सेदुर आगि सीस उपराही । पहिला तरिवन चमकत जाहीं
कुच गोला दुइ हिरदय लाए । अचल धुजा रहहिं छिटकाए
रसना लूक रहहि मुख खोले । लका जरै सो उनके बोले
अलक जँजीर बहुत गिउ बाँधे । खीचहि हस्ती, टूटहि काँधे
बीर सिंगार दोउ एक अऊँ । सत्रुसाल गढ भजन नाऊँ
तिलक पलीता माथे, दसन बज्र के बान
जेहि हेरहि तेहि मारहि चुटकुस कटहि निदान

जेहि जेहि पथी चली वै आवहि । तहँ तहँ जटै आगि जानु लापई
जरहि जो परवत लागि अकासा । बनखँड धिकहिं परास के पासा
गैमउं गयद जरे गए कारे । ओ बन-मिरिग रोअ भवकारे
कोइल, नाग, काग औ भँवरा । और जो जरे तिनहिं को सँवरा
जरा समुद्र पानि भा खारा । जमुना साम भई तेहि भारा
धुआँ जाम, अंतरिल भए मेघा । साम भा धुआँ जो ठेघा
सूरुज जरा चाँद औ राहू । धरती जरी, ल क भा दाहू

धरती सरग एक भा, तबहु न आगि बुभाइ
उठे बज्र जरि डुंगवै, धूम रहा जग छाइ

सच तो यह है कि लोक-भाषा का इतना पुष्ट और सार्थक

प्रयोग हिन्दी के किसी कवि ने नहीं किया है। लगभग सभी श्रेष्ठ कवि संस्कृत भाषा, संस्कृत पदावली और संस्कृत काव्य साहित्य एव काव्य शास्त्र से पद-पद पर सहारा लेते हैं। धरती पर बहने वाली सामान्य भाषा को जनगंगा को काव्यतीर्थ के नीचे ले आने का भगीरथ-प्रयत्न किसी कवि ने नहीं किया। इसका श्रेय जायसी को है। आज जब भिन्न-भिन्न जनपदों की लोक-भाषाओं (मातृभाषाओं) को साहित्य-श्रेणी तक उठाने की बात चली है, तो जायसी की भाषा का महत्व और भी बढ़ जाता है। जायसी से पहले अवधी जनपदीय भाषा मात्र थी। सूफियों ने इसे साहित्य के लिए अपनाया। जायसी इनमें सबसे महत्वपूर्ण हैं। एकमात्र अवधी को लेकर, उसे अन्य प्रादेशीय भाषाओं और संस्कृत भाषा के मिश्रण से मुक्त रखकर, कल्पना, भाव, रस, रीति, धर्म और दर्शन की अत्यन्त ऊँची और सार्थक अभिव्यजना उन्होंने की।

जायसी की कथा और उनके चरित्र-चित्रण पर भी थोड़ा कहना है। जायसी साहित्यशास्त्र के पंडित नहीं हैं। उनके सामने कथा के जो फारसी आदर्श (मसनवी इत्यादि) रहे होंगे, उनमें कथासौष्ठव और कहानी-कला पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। किसी भी वैचित्र्य पूर्ण विविध-प्रसंगमयी कहानी को काव्य का रूप दे देना मसनवी लिखने वालों की शैली रही है। केवल एक बात होनी चाहिये। उस कहानी में प्रियप्राप्ति की कठिनाइयों और प्रेम की पीर (मिलन, वियोग) के प्रसंग मार्मिक ढंग से आये हों। केवल इन्हीं मार्मिक प्रसंगों को लेकर भिन्न-भिन्न सूफी कवियों ने प्रेम-विरह-सम्बन्धी अनेक प्रभावशाली चित्रण उपस्थित किये हैं। वास्तव में सूफी कवियों को न साहित्यिकता का आग्रह है, न मौलिकता का। जायसी ने स्वयं अपने पूर्ववर्ती कवियों के नाम लेकर उनके

प्रति अपने ऋण को स्वीकार किया है। साहित्यिकता जायसी में काफी है, परन्तु वह लोक के भीतर से आई है, साहित्य के भीतर से नहीं। साहित्य और मौलिकता से ऊपर जो सार्वभौम प्रेम-विरह के भाव हैं, उन सार्वभौम प्रेम-विरह के भावों के सहारे विश्वव्यापी आध्यात्मिक प्रेम-विरह की जितनी भी अभिव्यंजना हो सकती है, वह सब जायसी के काव्य में है। हो सकता है, आज हम उन्हें वह स्थान न दे सकें जो कुछ वर्षों पहले आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उन्हें दिया था, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि हिंदी कथा-काव्यों में 'पद्मावत' का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है और अनेक त्रुटियों के होते हुए भी वह सूरसागर, रासो, रामचरितमानस प्रभृति कथाग्रथों की परंपरा में ही आता है। सूफी कवियों का सबसे कमजोर पहलू उनका चरित्र-चित्रण है। जायसी के काव्य में कितने ही चरित्र आये हैं—रत्नसेन, पद्मावती, नागमती, राघव-चेतन, गोरा, बादल, बादल की माता, देवपाल, देवपाल की दूती, अलाउद्दीन। जायसी का ध्यान कथा-प्रवाह पर ही भी विशेष रहा है और कथा-प्रवाह में जो चरित्र जिन प्रकार रंग गया, वह चरित्र उस प्रकार रंग दिखलाई पड़ता है। अधिकांश चरित्र या अच्छे हैं या बुरे। उन्हें कला के हार्थी सँवारने का प्रयत्न नहीं हुआ है। प्रत्येक चरित्र को किसी विशेष गुण या भाव में गूँथ दिया गया है। संश्लिष्ट चरित्र के नाम पर एक भी चरित्र पद्मावत में नहीं मिलेगा। प्रत्येक चरित्र किसी न किसी रूप में आदर्श अथवा भ्रष्ट है—उसी एक रंग में वह बराबर रंगा हुआ है। "रत्नसेन प्रेम का आदर्श है, गोरा-बादल वीरता के आदर्श हैं, पर एक साथ ही शक्ति, वीरता, दया, क्षमा, शील, सौन्दर्य और विनय इत्यादि सब का कोई एक आदर्श जायसी के पात्रों में नहीं है।" (जायसी ग्रन्थावली, भूमिका, पृ० ११७)

मानवी प्रकृति का “सन्निवेश पद्मावत मे बहुत कम मिलता है । गोस्वामी तुलसीदास ने जिम प्रकार स्थान-स्थान पर मनुष्य मात्र मे सामान्यतः पाई जाने वाली अंतर्प्रवृत्ति की मल्लक दिखाई है उस प्रकार जायसी ने नहीं ।” (वही, पृ० १२७) इस तुलना को आगे बढ़ाते हुए आचार्य शुक्ल कहते हैं—“एक उदाहरण लीजिये । गौरी के मंदिर मे जाकर इच्छा रहते भी जानकी का राम की ओर न ताक कर आँख मूँद कर ध्यान करने लगना उस कृत्रिम उदासीनता की व्यंजना करता है जो ऐसे अवसरो पर स्वाभाविक होती है । सखियो ने उस अवसर पर जो परिहास की स्वच्छदता दिखाई है वह भी सामान्य स्वभावगत है । पर जायसी की पद्मावती महादेव के मडप मे सीधे जोगी रत्नसेन के पास जा पहुँचती है और उसकी सखियो मे ऐसे अवसर पर स्वाभाविक परिहास का उदय भी नहीं दिखलाई पड़ता । रूप और शील के साक्षात्कार से मनुष्य मात्र की अंतर्वृत्ति जिस रूप की हो जाती है उसकी बहुत सुन्दर झोंकी गोस्वामीजी ने उस समय दिखाई है जिस समय बनवासी राम को जनपदवासी कुछ दूर तक पहुँचा आते हैं और उनकी वाणी सुनने के लिए कुछ प्रश्न करते हैं । कैकेयी और भंथरा के संवाद मे भी मनोवृत्तियों का बहुत सूक्ष्म निरीक्षण है । जायसी भिन्न-भिन्न मनोवृत्तियों का परख मे ऐसी दक्षता नहीं दिखाते (वही, पृ० १२७—१२८) ।

जायसी की जो विशेषता साधारण पाठक की पकड़ मे सब से पहले आती है वह उसकी कल्पना की अतिशयता । कुछ मसनवी-काव्य शैली को परंपरा से प्रभावित होकर, कुछ अपनी प्रकृत-वश जायसी ने स्थान-स्थान पर कल्पना के रंगीन महल खड़े कर दिये हैं । तुलसीदास का काव्य इस दृष्टि से जायसी के काव्य के ठीक विपरीत है । तुलसीदास क्लासिकल हैं,

मर्यादावादी है; जायसी रोमांटिक हैं, स्वच्छंदतावादी । उनकी उपमाएँ-उत्प्रेक्षाएँ सब नई हैं, शास्त्रों के पन्ने उनके लिए नहीं उलटे गये । उन्होंने जो देखा, उस पर चमकते नये रंगों का एक धूपछाही आवरण चढ़ाकर देखा । जो कहा, उसे इतना उठाकर कहा कि प्रस्तुत-अप्रस्तुत का सम्बन्ध आकाश-पाताल का सम्बन्ध बन गया । अतिशयोक्ति की प्रवृत्ति से जायसी का काव्य पद-पद पर दूषित है । वह जैसे साधारण अनुभव की बात कहना ही नहीं चाहते । स्त्री के रूपक में तोप के वर्णन का उल्लेख हम पिछले पृष्ठों में कर चुके हैं । इस प्रकार की ऊहापोहात्मक कल्पना काव्य के प्रकृत रस में बाधा पहुँचाती है । परन्तु उस युग में कदाचित् स्त्री (वह भी युवती) कवियों के चितन पर उसी प्रकार छाई हुई थी जिस प्रकार आज के युग में छाई हुई है । मिलन (संयोग शृङ्गार)—प्रसंगों के अवसरों पर रति-रण का रूपक बँधने की जिस प्रथा को जयदेव प्रभृति वैष्णव भक्त कवियों ने चलाया था, उसे भी जायसी ने बराबर निवाहा है और इतना निवाहा है कि कहीं-कहीं मन घृणा और क्षोभ से भर जाता है । बादल की नवागता बहू कहती है—

जौ तुम चहहु जूझि, पिय, बाजा । कोन्ह सिगार-जूझ मैं साजा
जोवन आइ सौह होइ रोपा । पिघला विरह कामदल कोपा
भौहे धनुष, नयन सर साधे । बरुनि बीच काजर विस बँधे
अलक-फॉस गिउ मेलि अस्भा । अघर अघर सौ चाहिं जूझा
कुमस्थल कुच दोउ मैमंता । पेलौं सौह, सँभारहु कंता
कौन भारतीय बधू इतनी निर्लज्ज हो जायगी कि पहले समागम के अवसर पर अपने पति से इस प्रकार प्रलाप करेगी ? परन्तु कल्पना और वर्णनातिशयता की झोक में जायसी कहते चले जाते हैं । अन्य स्थलों पर उन्होंने भारतीय नारी के शील को

भली प्रकार निभाया है, परन्तु जहाँ संयोग के प्रसंग हैं, वहाँ वे चूक गए हैं।

फिर भी अनेक पंक्तियाँ ऐसी हैं जिनमें जायसी की कल्पना अत्यन्त सहृदयता से सजी हुई मिलती है और वह आकाश-पाताल से सादृश्य-धर्म-मूलक नई-नई सुन्दर सामग्री जुटाती है। कुछ उदाहरणों से इस क्षेत्र में जायसी की श्रेष्ठता भली भाँति प्रतिपादित हो जायगी—

१—अस वै नयन चक्र दुइ भँवर समुद उलथाहि
जनु जिउ घालहि डोल मँहँ लेइ आवहि जेह जाहि
(क्रियोत्प्रेक्षा)

२—का सरवरि तेहि देउँ मयक । चोद कलकी वह निकलक
औ चोदहि पुनि राहु गरासा । वह बिनु राहु सदा परगासा
सुवा सो नाक कठोर पँवारी । कोमल तिल-पुटुप सँवारी
(व्यतिरेक)

रतनारे नेत्रों के बीच में घूमती हुई पुतलियों की शोभा का वर्णन देखिये—

३—राते कँवल करहि अलि भवों । घूमहि माति चहहि अपसवों
इसी प्रकार अचेत पद्मावती से सखी कहती है—

कँवल-कली तू, पदमिनी, गह निसि भएउ विहानु
अबहुँ न सपुटे खोलसि, सब रे उवा जग भानु
इन पंक्तियों में जायसी का प्रिय अलंकार रूपकातिशयोक्ति प्रयोग में आया है। इस अलंकार के और प्रयोग देखिये—

मानु नावँ सुनि कँवल बिगासा । किरि कै भँवर लीन्ह मधु वासा

×

×

×

साम भुअँगिनि रोमावली । नाचि भहि निकसि कँवल कहँ चली

आइ डुवौ नारँग बिच भई । देखि मयूर ठमकि रहि गई

×

×

×

पन्नग पकज कमुख गहे, खजन तहाँ बईठ
छत्र, सिँघासन, राज, धन, ता कहँ होई जो दीठ

४—कभी-कभी तो कवि अत्यंत संश्लिष्ट अलंकारों का प्रयोग करता है जैसे इस पंक्ति में—

जोवन-जल दिन-दिन जस घटा । भँवर छपान हँस परगटा
इस पर आचार्य शुक्ल लिखते हैं—“जैसे-जैसे यौवन-रूपी जल दिन-दिन घटता जाता है वैसे ही वैसे (शरीर-रूपी नदी या सरोवर में) पानी की बाढ़ के भँवर छिपते जाते हैं और हंस (मानसरोवर से आकर) दिखाई पड़ने लगते हैं । यह तो हुआ सांगरूपक । पर एक बात है । जल का प्रयोग जिस पर किया गया है उस यौवन का उल्लेख तो साथ ही है पर दूसरी पंक्ति में भँवर और हंस का जिनपर आरोप है उन काले और श्वेत केशो का उल्लेख नहीं है । अतः दूसरी पंक्ति में हमें रूप-कातिशयोक्ति माननी पड़ती है ।” वास्तव में ज्ञात-अज्ञात रूप से अनेक अलंकार जायसी की रचनाओं में आ गये हैं, परन्तु उनके लिए कवि ने स्वयं कोई प्रयत्न नहीं किया है । उसकी कल्पना अत्यन्त निर्बाध रूप से प्रवाहित होती है और प्रिय के प्रेम-भाव में रँगी सृष्टि और उसके सौन्दर्य के उपादान विलक्षण सादृश्यो की स्थापना करते हैं ।

(मलिक मुहम्मद जायसी और उनकी रचनाओं पर हम विशद रूप से विचार कर चुके । हमने देखा कि जायसी एक विशेष वर्ग के कवि हैं । उन्होंने इस्लामी सूफ़ी धारा का वेदांत-योगनिष्ठ भारतीय रूप उपस्थित किया है । जो कुछ उन्होंने उपस्थित किया है, वह उनका अपना है, मौलिक है, और शास्त्र-ज्ञान के माध्यम से नहीं स्वयं आत्मानुभूति के माध्यम से उन्हें प्राप्त हुआ है । वेदांत और योग जायसी के समय की दो महत्त्व-

पूर्ण धाराएँ थीं। एक तीसरी धारा भक्तिवाद का हमने नाम नहीं लिया है। पद्मावत में राम और कृष्ण की पौराणिक कथाओं के जो निर्देश हैं, उनसे यह स्पष्ट है कि जायसी इन पौराणिक महापुरुषों से पूर्णतः परिचित थे। यह भक्तिवाद उनके लिए अधिक रहस्यमय नहीं रहा होगा। स्वयं सूफीमत को प्रेम की साधना भक्तिवाद से किसी भी प्रकार भिन्न, किसी भी प्रकार कम आकर्षक नहीं है। इसा से कदाचित् जायसी ने अपने ग्रंथ में भक्तिवाद को स्थान नहीं दिया। उन्होंने वेदांत-योग-सूफीमत समन्वित एक सामान्य प्रेम-मार्ग की खोज की। इसी शताब्दी के लगभग योग और वेदांत की दो धाराओं की जो गंगा-जमुना प्रवाहित हुई थी, जिसने कबीर की रहस्यमयी वाणी में एक नई गंगा-जमुनी आभा दिखलाई, वही सूफी विचारधारा की अन्तःसलिला सरस्वती के संगम के बाद पद्मावत में त्रिवेणीरूप में उपस्थित हो सकी है। यह संगम साधारण पाठक की समझ में नहीं आता, इसमें जायसी का कोई दोष नहीं। (जायसी का श्रेय यह है कि उन्होंने अभारतीय सूफी विचारधारा को भारतीय दार्शनिक विचारधारा के साथ मिला कर देखा है और उसे अपने युग के अनुरूप नया रूप दिया है। अन्य मध्ययुगीन भक्तों और संतों की तरह जायसी की साधना भी व्यक्ति की साधना है, साहित्य की सामाजिकता की पुकार के इस युग में चाहे यह बात लोगों को अखरे। गोरखनाथ, कबीर, सूर, तुलसी, जायसी सभी ने कही थोड़ी, कही अधिक समाज से हटकर केवल अपनी तपस्या, अपनी निष्ठा, अपनी उच्च वृत्तियों को जाग्रत किया है। यदि हम प्राचीन भक्त-संत-सूफी काव्य को आधुनिक दृष्टिकोणों से परखना चाहेंगे तो हम अपने कवियों के प्रति अनुदार ही सिद्ध होंगे। इन कवियों की महत्ता यही है कि उन्होंने अपने जीवन

में उच्चतम प्रवृत्तियों को जगाया, मनुष्य और प्रेम की सर्वोपरिता और सार्वभौमिकता की घोषणा की और अपने चारों ओर उमड़ते अंधकार से अपने को भयभीत नहीं होने दिया !)

जो हो, इसमें संदेह नहीं कि जायसी का हिन्दी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह हिन्दी के प्रथम श्रेणी के कवि नहीं ठहरें, परन्तु दूसरी श्रेणी में तो उनका स्थान शीर्ष पर रहेगा ही ! प्रेम और विरह भाव के आध्यात्मिकता-व्यंजक चित्रण और अवधी लोक-भाषा के अत्यन्त स्वाभाविक एवं मार्मिक प्रयोग में वह अद्वितीय हैं। उनकी अनेक पंक्तियों में जो भाषा-सौन्दर्य है, वह तुलसी को छोड़ कर अन्यत्र दुर्लभ है। एक अत्यन्त व्यापक, सार्वभौम, मार्मिक, प्रेम-विरह-भाव की व्यंजना जैसी नागमती के विरह-वर्णन (षट्ऋतु वर्णन और वारहमासा) में है वैसी कृष्ण कवियों के भ्रमरगीतों को छोड़कर और कहीं नहीं मिलेगी। इसमें संदेह नहीं कि हिन्दी के प्राचीन काव्य के प्रेमी सदा उनका आदर करते रहेंगे और जैसे-जैसे हम धरती के निकट आते जायेंगे, वैसे-वैसे यह आदर-भाव बढ़ता जायगा।

हिन्दी साहित्य संबंधी निबंध-संग्रह

प्रबंध-चिन्तामणि

हिन्दी का आलोचना-साहित्य अभी अधिक पुराना नहीं हुआ है। जो है, वह कुछ खोज-ग्रंथों और प्रबन्धों के रूप में है जो खोज-पत्रिकाओं में बिखरे पड़े हैं, अतः सर्वसुलभ नहीं हैं। मौलिक आलोचनात्मक प्रबन्ध-साहित्य का हिन्दी में अभी श्रीगणेश ही हुआ है।

“प्रबन्ध-चिन्तामणि” के विद्वान लेखक श्री रामरतन भटनागर ने हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में एक विशेष स्थान प्राप्त कर लिया है। हिन्दी साहित्य का कोई अंग उनकी तीव्र समीक्षक-दृष्टि से बच नहीं सका है। अपने ग्रन्थों के लिए वे साधारण जनता और खोजी विद्वानों का समान आदर प्राप्त कर चुके हैं। प्रबन्ध-चिन्तामणि में इन्हीं विद्वान लेखक के प्राचीन हिन्दी काव्य, धर्म, दर्शन और कला-सम्बन्धी इक्कीस निबन्ध संग्रहीत हैं। हिन्दी की सर्वोच्च कक्षाओं के विद्यार्थी और हिन्दी के प्राचीन काव्य के पारखी और आलोचक इन निबन्धों से नई अतर्दृष्टि प्राप्त कर सकेंगे, ऐसी आशा है।

हिन्दी साहित्य-सम्बन्धी गवेषणात्मक प्रबन्धों का इतनी उच्च श्रेणी का संग्रह हिन्दी में नई चीज़ होगी।

मूल्य ८)

शीघ्र प्रकाशित होगा

किताब महल : प्रकाशक : इलाहाबाद

